सात्विक और योगयुक्त जीवन

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय
पाण्डव भवन, आबू पर्वत (राजस्थान)

सात्त्विक और योगयुक्त जीवन

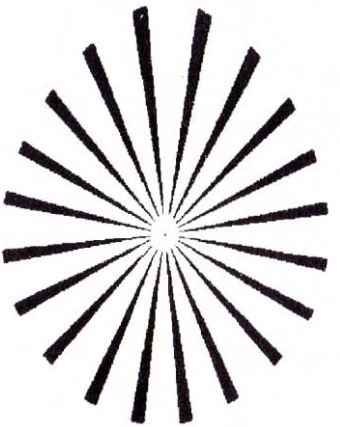

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय
आबू पर्वत (राजस्थान)

लेखक :
ब्र.कु. जगदीशचन्द्र

प्रकाशक एवं मुद्रक:
साहित्य विभाग,
ओमशान्ति प्रेस, ज्ञानामृत भवन,
शान्तिवन, आबू रोड – 307 510

पुस्तक मिलने का पता:
साहित्य विभाग,
पाण्डव भवन, आबू पर्वत – 307 501

कापी राइट:
प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय,
पाण्डव भवन, आबू पर्वत – 307 501
राजस्थान, भारत ।

सात्विक जीवन, आहार-शुद्धि तथा आचार-शुद्धि

संसार में हरेक मनुष्य चाहता है कि मेरा जीवन सात्विक हो, मैं अच्छे कार्य करूं, महान् बनूं और मेरे जीवन में शान्ति बनी रहे । परन्तु इच्छा होना एक बात है और उस इच्छा को साकार करने के लिए पुरुषार्थ करना दूसरी बात है। आज विश्व में सबसे बड़ी यही समस्या है कि लोग चाहते कुछ और हैं और करते कुछ और हैं। वे चाहते शान्ति हैं परन्तु परिस्थिति-वश, संस्कार-वश, मिथ्या मान्यता-वश या मन के वेग-वश कर्म ऐसे कर बैठते हैं जिससे उनके अपने और दूसरों के जीवन में अशान्ति पैदा हो जाती है। वे चाहते तो स्नेह और प्रेम हैं परन्तु बात ऐसी कर लेते हैं जिससे गलतफहमी, मन-मुटाव, संघर्ष और नफरत को बढ़ावा मिलता है। वे चाहते तो स्वास्थ्य और विश्रान्ति हैं परन्तु उनका खान-पान ऐसा है जिससे उनके शरीर में स्वास्थ्य-नाशक, रोगोत्पादक तथा उत्तेजनकारी विषैले तत्व इकट्ठे होने लगते हैं जो न केवल उनके शरीर के लिए हानिकारक होते हैं बल्कि उनके मानसिक सन्तुलन को भी बिगाड़ते, उनकी निर्णय-शक्ति को विचलित कर देते, उनकी अभिरुचियों को उग्रता की पुट दे देते और उनके मानसिक आवेगों (Emotions) को उच्छृंखल, अनियन्त्रित, असन्तुलित, अमर्यादित या दिशा-भ्रष्ट कर देते हैं।

अत: आज इस बात की ज़रूरत है कि मनुष्य को ऐसे विधि-विधान बताये जायें, ऐसे ज्ञान-विज्ञान से अवगत कराया जाए, ऐसी मार्ग-प्रदर्शना दी जाए और ऐसी प्रेरणाा दी जाये कि जिससे वह अपने जीवन को सात्विक बना सके तथा स्वास्थ्य और शान्ति से जीवन व्यतीत कर सके

तथा अपने परम लक्ष्य की ओर त्वरित गति से बढ़ सके। इस प्रयोजन को सामने रख कर हम ऐसी कुछ लेखमाला प्रकाशित कर रहे हैं जिसका सम्बन्ध मनुष्य के आचार और व्यवहार से है क्योंकि सदाचार और सद्व्यवहार ही सुख-शान्ति की आधारशिला है।

किन्तु एक बात जिसे प्राय: लोग नहीं जानते, नहीं समझते या जानते हुए भी आचरण में नहीं लाते, वह यह है कि मनुष्य के आहार का उसके आचार, विचार और व्यवहार से गहरा सम्बन्ध है। प्राचीन काल से यह कहा चला आता आ रहा है कि अन्न का मन पर प्रभाव पड़ता है और मन का उसके स्वास्थ्य व रोगों से गहरा सम्बन्ध है। अन्न उत्तेजक भी हो सकता है और विश्रान्तिकारी भी। मनुष्य के भोजन में मादक पदार्थ भी हो सकते हैं और आलस्य-उत्पादक भी। भोजन ऐसा भी हो सकता है जो स्फूर्ति को बनाये रखे और ऐसा भी जिससे अधिक नींद आये या कार्य करने में रुचि न हो। अत: स्वास्थ्य और उत्पादन-वृद्धि (Growth and Production) के बारे में अधिक सोचने वाले इस युग में स्वास्थ्य का भौतिक पक्ष भी ज्ञेय है और मानसिक पक्ष भी। एक आध्यात्मिक पुरुषार्थी अथवा नीति-प्रिय व्यक्ति के लिए तो भोजन का अकथनीय महत्त्व है ही, एक ओर योगाभ्यास करके उन्नति की सीढ़ी पर चढ़ने की चेष्टा करना और दूसरी ओर योगी के लिए वर्जित पदार्थों को ही खा-पी लेना-ऐसा ही है जैसा कि आटा गूंध कर उसमें पानी डाल देना।

भक्ष्याभक्ष्य के विषय में आज वैज्ञानिक प्रयोग और अनुसंधान भी बहुत हुए हैं जिनकी चर्चा भोजन-शास्त्र (Dietitics) में तथा चिकित्सा सम्बन्धी पत्रों-पत्रिकाओं में प्रचुर मात्रा में हुई है और होती रहती है। शराब पीने से

क्या हानियाँ हैं, धूम्रपान से कौन-कौन से रोग पैदा होते हैं, शाकाहार अच्छा है या माँसाहार – इन तथा इन-जैसे अन्य विषयों पर विस्तृत और विज्ञान-प्रणाली से प्रमाणित साहित्य प्राप्त है। हमने इस ख्याल से कि विषय जटिल न बन जाए, उनकी थोड़ी ही चर्चा की है और वह भी ऐसी रीति से कि जिसे एक साधरण व्यक्ति भी समझ सके। परन्तु यहाँ यह कहते हुए खुशी होती है कि आज विज्ञान भी आध्यात्मिक पुरुषार्थी के लिए बताए हुए युक्ति युक्त आहार की उत्तमता का समर्थन करता है और मांसाहार, धूम्रपान, पद्यपान आदि-आदि के बारे में आँकडे, तथ्य, प्रयोग, निष्कर्ष इत्यादि प्रस्तुत करके उनका जोरदार शब्दों में वर्णन करता है।

हमने भक्ष्याभक्ष्य के विषय के अतिरिक्त सिनेमा की भी चर्चा की है क्योंकि लोग आज उसे मन के आहार (Mental Refreshment and Entertainment) के तौर से सेवन करते हैं। टी॰ वी॰ और वीडियो के इस जमाने में लोग घर बैठे मनोरंजन नहीं बल्कि मन को हानिकारक विचारों से दूषित बना रहे हैं। हो सकता है कि संक्षेप में हमारे ये शब्द किसी सिनेमा-प्रेमी को अप्रिय लगें परन्तु हमारी मान्यता है कि इस विषय पर अधिक चर्चा करने पर वे मानेंगे कि इससे मन की उन्नति नहीं होती।

अन्त में हमारी आशा है कि इस पुस्तिका से पाठकों को सात्विक, शाकाहारी, युक्तियुक्त और पवित्र भोजन के लिए प्रेरणा मिलेगी और अनेकानेक व्यक्ति इसे पढ़ कर सिग्रेट-बीड़ी, शराब आदि को छोड़ कर तथा अश्लील चलचित्रों से छुटकारा पाकर, आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलेंगे और स्वास्थ्य, सुख तथा शान्ति का सौभाग्य प्राप्त करेंगे।

– जगदीश चन्द्र (सम्पादक)

अमृत-सूची

क्र०	विवरण	पृष्ठ सं०
१.	शराब, माँस, सिग्रेट तथा सिनेमा सात्त्विक जीवन के शत्रु	७
२.	पीना बुरा शराब का	१४
३.	मद्यपान का प्रभाव विवेक तथा निर्णय शक्ति पर	२५
४.	धूम्रपान या विषपान?	३८
५.	माँसाहार – नैतिक पक्ष	४७
६.	माँसाहार और भ्रान्तियाँ	५५
७.	क्या मनुष्य को अपने भोजन के लिए हिंसा का अधिकार है?	६९
८.	शाकाहारी सिद्धान्त से सम्बन्धित कुछ प्रश्न	८३
९.	सिनेमा का अधिकतर प्रभाव – अच्छा या बुरा?	९१
१०.	सिनेमा द्वारा मनोरंजन या प्रायः पतन	१०६
११.	मानसिक पवित्रता और चारित्रिक श्रेष्ठता	११३
१२.	दिव्य गुणों से जय-जयकार, आसुरी लक्षणों से हाहाकार	१२०
१३.	सहज राजयोग से मिटते हैं रोग और भोग	१२६

शराब, माँस, सिग्रेट तथा सिनेमा सात्विक जीवन के शत्रु

शराब जीवन खराब

कई मनुष्य मित्रों के दबाव में आकर या परिस्थितियों से परेशान होकर मद्यपान की आदत मोल ले लेते हैं। परन्तु वास्तव में यह आदत न केवल

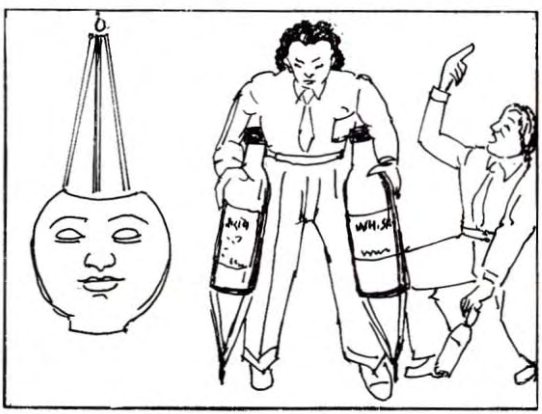

उन्हें महंगी पड़ती है बल्कि हर प्रकार से उनके लिए शारीरिक हानि, नैतिक गिरावट का कारण बन जाती है क्योंकि आज वैज्ञानिक परिक्षणों से भी यह सिद्ध है कि शराब का मनुष्य के मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि मनुष्य की संयम शक्ति घट जाती है, वह अपनी निर्णय शक्ति तथा मानसिक सन्तुलन को खो बैठता है, अपने अर्जित गुणों को भी गंवा बैठता है तथा भाव-आवेश में आकर ऐसा आचरण करता है कि जिससे उसके

मन को भी धक्का लगता है। मद्यपान से मनुष्य के शरीर के अगों का सामन्जस्य बिगड़ जाना, उसकी श्वास-क्रिया, रक्त-चाप आदि पर बुरा प्रभाव पड़ना और अधिक पीने पर सुधबुध खो बैठना आदि अनेक हानियां होती हैं।

इसके अतिरिक्त इस आदत से मनुष्य के केवल धन का अपव्यय ही नहीं होता बल्कि वह इसके साथ दूसरी भी बुरी आदतों को मोल ले लेता है। जैसे लंगड़ा मनुष्य बैसाखियों (Crutches) के बिना नहीं चल सकता, वैसे ही शराब के व्यसन वाला व्यक्ति भी बोतल ही को अपनी बैसाखियाँ बना कर जीवन चलाता है। वह आयु-भर के लिए उनकी गुलामी स्वीकार कर लेता है। धन खर्च करके वह उन्मत्तता, अनियन्त्रण और उत्तेजना के रास्ते को अपनाता है और अपने क्षणिक उन्माद के पीछे शाश्वत् आन्तरिक सुख को खो देता है।

शराब से कितने जीवन नष्ट हुए हैं, घर बर्बाद हुए हैं और इससे न जाने कितने अपराध और कितनी दुर्घटनाएं होती हैं! अतः क्या ही अच्छा हो कि मनुष्य इस गुलामी से छूट कर ज्ञानामृत का प्याला पीकर स्थायी नारायणी नशे और महानता के जीवन का भागी बने!

धूम्रपान से कैंसर-जैसा रोग

धूम्रपान से मनुष्य्य को कैन्सर-जैसा विकराल रोग होता है, वह दमा की बीमारी से पीड़ित होता है तथा अपने धन को भी धुएँ में जला देता है। उसकी बुद्धि में तम्बाकू पीने का ही संकल्प भरा रहता है और नैतिकता धूमिल होने लगती है। छह फुट का मनुष्य चार इंच की सिग्रेट का गुलाम

हो जाता है और सिग्रेट में जो 24 प्रकार के विष वैज्ञानिकों ने बताये हैं उन द्वारा अनेक रोगों का शिकार होता है। डाक्टर लोग बतातें है कि एक सिग्रेट पीने से मनुष्य की 18 मिनट आयु कम होती है। परन्तु शारीरिक हानि से कहीं अधिक हानि तो मनुष्य की आत्मा को होती है क्योंकि वह दुर्बल हो जाती है, तभी तो मनुष्य सिग्रेट को सहज ही नहीं छोड़ सकता। यदि मनुष्य 'सहज राजयोग' का अभ्यास करे तब सहज ही उसकी यह आदत छूट सकती है।

माँसाहार —निर्दयता का व्यवहार

संसार में मनुष्य के भोजन के लिए हजारों-लाखों पदार्थ हैं। परन्तु खेद है कि कई मनुष्य उन सभी के होते हुए भी इतने निर्दयी और स्वार्थी हैं कि

वे अपने पेट के लिए दूसरों की हत्या कराने में भी संकोच नहीं करते। वास्तव में मनुष्य जो कि सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना गया है, के लिए यह अनुचित, अन्यायपूर्ण और अशोभनीय है। मनुष्य को सोचना चाहिए कि जैसे मुझे और मेरे बच्चों तथा मित्रों को जीने का अधिकार है, वैसा ही अधिकार पशु-पक्षियों को भी है। जब उन्हें मारा जाता है तब उन्हें भी तो पीड़ा होती है। क्या हम नहीं देखते कि जब किसी बकरे को कसाई की दुकान की ओर खींच कर ले जाया जा रहा होता है तो वह कितना रोता-चिल्लाता तथा भागने की कोशिश करता है। यदि मनुष्य भी किसी दुर्बल प्राणी को दबोच कर अपना पेट भरता है तब जंगली जानवरों तथा मनुष्य की नीति में अन्तर क्या रहा?

फिर क्या मनुष्य का पेट कोई कब्र है कि पशुओं के मुर्दों को (पका कर) उसमें गाड़ दे। यह कैसी घिनौनी बात है कि मनुष्य का शरीर जिसे मन्दिर के समान माना जाता है, उसको उसने कब्र ही बना दिया!

आज मनुष्य मांस खाने के लिए कई तर्क पेश करता है। वह कहता है कि उससे शरीर को काफी मात्रा में प्रोटीन मिलती है, इससे शक्ति मिलती है, आदि-आदि। परन्तु वैज्ञानिक आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है कि मनुष्य की देह मांसाहार के लिए बनी ही नहीं है और कि ऐसे बहुत-से अन्न आदि हैं जिससे मनुष्य को काफी मात्रा में प्रोटीन आदि मिल सकती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इससे मनुष्य में स्वार्थ, निर्दयता, हिंसा, बर्बरता, तमोगुण आदि की वृद्धि होती है जो कि उसके नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए हानिकारक है।

क्या ऐसे मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा जा सकता है?

मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानने का अर्थ क्या है? यदि दूसरे प्राणी मनुष्य से भयभीत होकर भागते हैं, यदि मनुष्य में घृणा भरी है, यदि वह

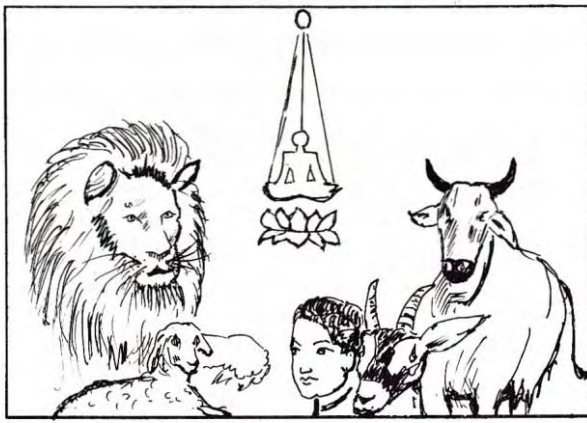

स्वार्थ का पुतला है, यदि वह अपना उल्लू सीधा करने के लिए स्व सिद्धान्तों की हत्या कर सकता है, यदि वह अपनी जिह्वा के रस के लिए अथवा अनेक पदार्थ उपलब्ध होने पर भी एक बार की क्षुधा तृप्ति के लिए किसी की हत्या के लिए भी निमित्त बनने को तैयार है, तब भला उसमें श्रेष्ठता क्या रही?

हम आज देखते हैं कि भारत तथा अन्य कई सभ्य देशों में यहाँ तक भी किया जाता है कि यदि कोई व्यक्ति अपने पालतू पशु को पूरा भोजन न देता हो या उस पर अधिक बोझ लाद देता है तो उसका चालान हो जाता है। इसको ध्यान में रखते हुए हमें सोचना चाहिए कि पशु को जान से मार डालना कितना भयंकर पाप है, यह तो अनैतिकता की पराकाष्ठा ही का एक रूप है।

कैसा है यह सिनेमा!

वास्तव में फिल्म मनोरंजन या शिक्षा के लिए एक अच्छा और बहुत

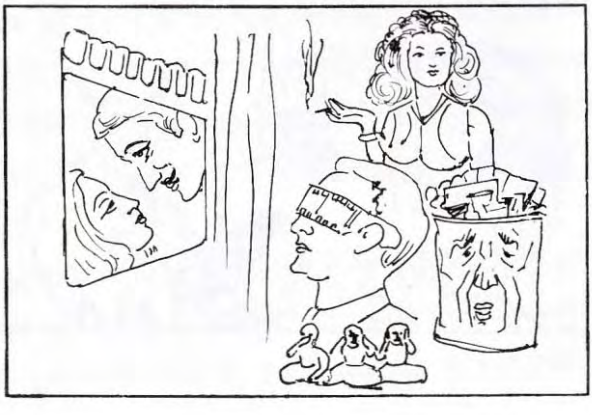

प्रभावशाली साधन है। परन्तु आज इसमें इतनी अश्लीलता, हिंसा, फैशन-परस्ती तथा बुरी आदतें प्रदर्शित की जाती हैं कि मानव पर बहुत बुरा असर पड़ता है।

हमें यह याद रखना चाहिए कि मनुष्य जो-कुछ देखता और सुनता है उसका थोड़ा-बहुत प्रभाव उसके मन पर अवश्य पड़ता है और इससे उसके संस्कार बनते हैं। मनुष्य के नेत्र एक कैमरें के लेंस के समान हैं। वे सिनेमा कि फिल्म का चित्र अपने पर डालते हैं। गोया मनुष्य के नेत्र उन चित्रों को फिल्म करते जातें हैं । अत: यदि वह ऐसी फिल्में देखेगा जिसमें मन को दूषित करने वाले तत्व होंगे तो उनसे उसके संस्कार बिगड़ेंगे ही। इस प्रकार स्पष्ट है कि वासनात्मक, हिंसात्मक तथा खर्चीले और कामोत्तेजक फिल्मों को देखने का अर्थ है अपने मन को कचड़े का डिब्बा बनाना जिसमें मनुष्य वैचारिक एवं भावात्मक कचड़ा ही इकट्ठा करता है।

मनुष्य की नैतिक, आध्यात्मिक एवं चारित्रिक उन्नति के लिए एक नीति वचन प्रसिद्ध है – ''बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो और बुरा मत बोलो''। अत: ऐसी फिल्में देखना जिनमें लड़ाई-झगड़ा, मक्कारी और फरेब और मन को बिगाड़ने वाले दृश्य हों, इस नीति वचन का उल्लंघन कर स्वयं पैसा खर्च करके अपनी अवनति करना है क्योंकि मनुष्य बार-बार जिस प्रकार के दृश्य या अभिनय को देखता है तथा जैसे गीत अथवा संवाद सुनता है। उसके अपने कर्मों में भी वैसा ही तत्व आने लगता है। अत: जो व्यक्ति बुराइयों से बच कर अपने जीवन को महान् बनाना चाहता है, उसको चाहिए कि ऐसी फिल्मों से दूर ही रहे।

पीना बुरा शराब का

आज संसार में मनुष्य के खाने-पीने के लिए अनेकानेक पदार्थ हैं। स्वास्थ्यप्रद, स्वादिष्ट और सन्तुलित खाद्य पदार्थों की कमी नहीं। परन्तु फिर भी मनुष्य कुछ ऐसे पदार्थ का सेवन कर लेता है जो उसके शरीर, मस्तिष्क तथा उसकी नैतिकता के लिए हानिकारक हैं। उनमें मद्यपान मुख्य है।

हाय रे 'मित्रों' का दबाव!

मद्यपान का प्रारम्भ लोग अलग-अलग कारण से करते हैं। कुछ लोग तो किन्हीं उत्सवों अथवा अवसरों पर अपने मित्र और सम्बन्धियों के दबाव डालने से ही इसे पहली बार 'पीना' शुरू करते हैं। उनके दोस्त उनसे कहते हैं – ''आज तो हमारे यहाँ खुशी का मौका है। आज तो तुम्हें पीनी ही पड़ेगी। अरे भाई! वाह, तुम मना करते हो? क्या तुम्हें सोसायटी में मिल बैठना नहीं आता? तुम सबके साथ शामिल होना भी नहीं जानते? तुम नहीं पियोगे तो हम तुम्हारे घर कभी नहीं आयेंगे...!''

तब वह बेचारा कहता है—''भाई, मुझे छोड़ दो; मैं और सब चीज खा लूँगा लेकिन इसके लिए मुझे मजबूर न करो। अगर मेरे घर वालों को मालूम हो गया कि मैं शराब पीने लगा हूँ तो मेरे लिए मुश्किल हो जाएगी। शराब को रहने दो; यह कोई अच्छी चीज थोड़े ही है कि इसके लिए मजबूर करते हो। कोई और चीज खा लूंगा; मैं खाने के लिए थोड़े ही मना कर रहा हूँ....।''

इस पर उसके दोस्त तपाक से कहते हैं– ''तो तुम्हारा मतलब है कि शराब बुरी चीज़ है? गोया हम सब शराब पीने वाले भी बुरे लोग हैं। भला

कभी शराब पीकर भी देखा है यह अच्छी है या बुरी या यों ही कह रहे हो? पीकर देखो, फिर बताना कि इसमें क्या खराबी है? दुनिया में कोई चीज़ न अच्छी है, न बुरी। तुम्हें इसके मजे का क्या पता? लो, अब हम अपने हाथों से तुम्हारे गिलास में डालते हैं। अब मना करके सबका मजा किरकिरा मत करना और हमारा मूड मत बिगाड़ना...।''

वह बेचारा इस दबाव में आकर पी लेता है और **एक बार की भूल का खमियाजा उसे सारी उम्र भुगतना पड़ता है। उस दिन की शराब से उसका खाना खराब हो जाता है।** एक बार पी लेने से उसके मन मैं यह विचार बैठ जाता है कि अब में पहले-जैसा पवित्र नही हूँ; अब मुझे दाग तो लग ही चुका है; अत: अब क्या परहेज? वह भूल जाता है कि दो ग़लतियाँ मिला कर एक सम्यक् बात नहीं बनती (Two wrongs do not make a right)। यदि वह उस दिन डटा रहता तो वह सदा के लिए बोतल की गुलामी से बच जाता ।फिर, यदि दबाव में आकर पीने के बाद भी दोबारा इस भूल का शिकार न होता तो ''सुबह का भूला शाम को भी घर वापिस आ जाये तो ठीक ही है।''– इस उक्ति के अनुसार बाकि जीवन में तो वह इस पतनकारी चीज के चंगुल से बच जाता ।परन्तु जैसे कि जापानी भाषा में एक कहावत है – ''पहले मनुष्य शराब को पीता है, फिर शराब, शराब को पीती है और फिर शराब मनुष्य को पी जाती है (First man drinks the wine, then wine drings the wine and, finally, wine drinks the man)" – इसके अनुसार आखिर शराब ही मनुष्य के जीवन को पी जाती है। वह छ: फुट का मनुष्य एक फुट की बोतल में बन्द

हो जाता है।

परिस्थितियों के वशीभूत

कई लोग ऐसे भी हैं जो मानसिक तनाव, जीवन में किन्हीं बड़े कार्यों में असफलता या परिवार एवं दफ्तर के लोगों से अनबन होने से या अशान्ति के किन्हीं अन्य कारणों से पहली बार शराब को मुंह लगाते हैं। जीवन की समस्याओं का सामना करने की सामर्थ्य स्वयं में न अनुभव करके वे अपनी परिस्थितियों से परे होने के लिए पीना शुरू करते हैं। उनको बताया गया होता है कि शराब के नशे में सब दु:ख दूर हो जाते हैं, सब गम गलत हो जाते हैं और मनुष्य मानसिक परेशानियों से छुटकारा पा लेता है; उन्हें क्या मालूम कि धीरे-धीरे इस आदत से परेशानियाँ और बढ़ेंगी।

शराब क्यों न पीयें?

प्रश्न उठता है कि आध्यात्मिक लोगों को मद्यपान के विरुद्ध क्या आपत्ति है? इसका उत्तर यह है कि –

(१) आध्यात्मवाद मनुष्य के व्यवहार को श्रेष्ठ बनाना चाहता है और उसके कर्मों को सुधारना चाहता है ताकि उसके अपने जीवन में भी शान्ति बनी रहे और वह दूसरों के लिए भी दु:ख का कारण न बने। इसके लिए वह मनुष्य को ऐसा मार्ग बताता है कि जिससे उसकी चेतना और निर्णय शक्ति बनी रहे, उसका विवेक जागृत हो, उसका मन सन्तुलित रहे और उसका कर्मेन्द्रियों पर नियंत्रण बना रहे। **परन्तु मद्यपान का प्रभाव मनुष्य के मस्तिष्क, विवेक, मानसिक सन्तुलन और कर्मेन्द्रियों पर इसके**

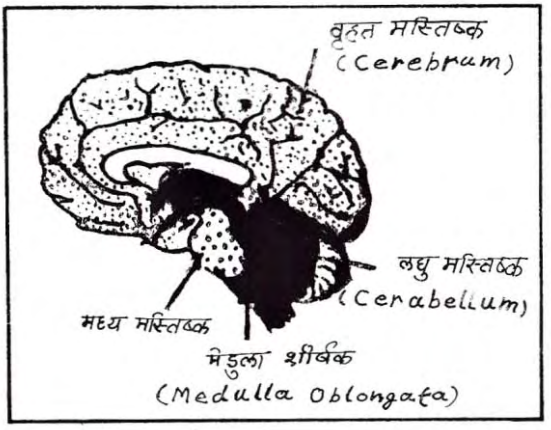

बिल्कुल विपरीत ही पड़ता है। शरीर-विज्ञान-वेत्ता कहते हैं कि शराब सारे तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System) पर बहुत हानिकारक प्रभाव डालती है। मनुष्य के तन्त्रिका में (१) मस्तिष्क (Brain), (२) मेरूरज्जू (Brain Stem), (३) अणु मस्तिष्क (Lower Brain), (४) मैडूला ओबलोंगेटा (Medulla Oblongata) जो मस्तिष्क और मेरूरज्जू को जोड़ता है और (५) वे तन्त्रिकाएँ भी शामिल हैं जो बाहर से मस्तिष्क की ओर संदेश ले जाती हैं अथवा मस्तिष्क से विभिन्न अंगो के लिए संदेश ले जाती है। इन्हीं तन्त्रिकाओं के द्वारा ही मस्तिष्क सारे शरीर को नियन्त्रण में रखता है। जिन्होंने भी शरीर-विज्ञान का थोड़ा अध्ययन किया है वे जानते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क के जो दो गोलार्द्ध भाग (Cerebral hemispheres) हैं, वे मनुष्य के कार्यों पर नियंत्रण रखने के अतिरिक्त समझने, विचार करने, निर्णय करने और सन्तुलन बनाये रखने तथा चेतना के केन्द्र हैं।

मनुष्य का अनु-मस्तिष्क (Lower Brain) मांस-पेशियों (Musclels) के कार्यों और क्रियाओं में तालमेल और सन्तुलन कायम रखता है। इसी प्रकार, मैडुला ओबलोंगेटा (Medulla Oblongata) श्वॅस व हृदय के क्रिया-कलापों को नियन्त्रित करता है और मेरू-रज्जू (Brain Stem) से जो अनेक तन्त्रिकायें (Nerves) निकलती हैं वे ही मस्तिष्क की ओर संदेश ले जाती हैं और वहां से आदेश लाती हैं। **अब देखा गया है कि मद्य में जो अल्कोहल (Alcohol) होती है उसकी मात्रा अधिक होने पर मस्तिष्क की संयम शक्ति बहुत घट जाती है और वह अपनी वाणी पर भी नियंत्रण नहीं रख सकता। इसका परिणाम यह होता है कि वह अधिकाधिक ऊँचा-ऊँचा, रोब से या अनर्गल ही बोलने लगता है जिससे दूसरों के साथ उसका झगड़ा हो जाता है।** वह अपनी निर्णय शक्ति और मानसिक सन्तुलन खो बैठता है और बचपन से लेकर अब तक अर्जित सभी सद्‌गुण मद्यपान की अवस्था में गँवा बैठता है। वह भावावेश में आकर स्वच्छन्दतापूर्ण आचरण करता है। इस प्रकार उसके नैतिक पक्ष को काफी हानि होती है। मेंडुला ओबलोंगेटा और अनुमस्तिष्क पर प्रभाव पड़ने से अधिक शराब पीने वाला व्यक्ति अपने शरीर को भी ठीक प्रकार से कन्ट्रोल में नहीं रख सकता। यहाँ तक कि यदि उसने अधिक शराब पी ली हो तो वह गन्दी नालियों में जाकर गिरता है, गन्दी गालियाँ देता है और गन्दी हरकतें करता है।

शराब से अनेक हानियाँ

देखा गया है कि अधिक शराब पीने पर वह कामातुर हो उठता है और

उसके व्यवहार से उसकी धर्मपत्नी और घर वाले रुष्ट हो जाते हैं और उसके अड़ोसी-पड़ोसी उसे चरित्रहीन मानने लगते हैं। इस नशे में वह लोगों के समक्ष अपने पैसे, अपनी बुद्धि, अपने मेल-मिलाप आदि के बारे में खूब डींग मारता है, हानि के सौदे कर लेता है और फिर होश में आने पर जब उस द्वारा हुई उसकी हरकतें बताई जाती हैं तो उससे वह समझता है कि अब वह लोगों की नजरों में गिर चुका है। जब वह अपने से छोटों अथवा अपने स्तर से नीचे के लोगों से अपने चरित्र की आलोचना सुनता है तो उसे अन्दर से शर्म भी आती है, उसके मन में गुस्सा भी पैदा होता है, उसके सामने निराशा भी कई बार आती है और, इसलिए, वह दुखित हो उठता है और इस दु:ख एवं अशान्ति को भूलाने के लिए वह घर में ही पड़ा-पड़ा और शराब पीता है। धीरे-धीरे हालत यह होती है कि अपने से भी कम स्तर के लोगों में जाकर वह जाम और जमशीद की बातें करता है और उनके साथ मिल कर पीता है। इसके लिए दिन-प्रतिदिन उसे पीने और पिलाने के लिए अधिकाधिक पैसे की आवश्यकता होती है और अब लोग उसे पैसा देने से भी डरते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि यह सारा पैसा शराब में ही बर्बाद कर देगा और इससे कुछ भी वापिस नहीं मिलेगा। इससे उसे क्रोध आता है और दु:ख भी होता है क्योंकि वह महसूस करता है कि उसकी पत्नी उसके बच्चे और उसके मित्र अब उसे पैसा नहीं देते और वे उसे एक गिरे हुए इन्सान की तरह देखते हैं और उससे दूर भागने की कोशिश करते हैं, इससे उसमें चोरी करने, उधार लेने, झूठ बोलने तथा अधिक खर्च करने की और तरह-तरह की दूसरी बुरी आदतें पड़ जाती हैं।

इन सब कारणों से ही आध्यात्मिक व्यक्ति मनुष्य को शराब पीने के लिए मना करता है क्योंकि मद्यपान से मनुष्य को दु:ख से छुटकारा पाने की जो आशा है, वास्तव में वह मिथ्या है, अज्ञानता पर आधारित है और अधिक दु:ख में धकेलने वाली है। इस आदत से मनुष्य दो-चार घण्टे के लिए अपनी परेशानियां भूलता होगा। परन्तु देखना तो यह है कि उसकी बजाए १०० बुराइयाँ और उसके पल्ले पड़ जाती हैं। यहाँ तक कि सामान्य रीति से सम्मान और स्वमानपूर्वक उसका जीवन भी मुश्किल हो जाता है।

शराब से शारीरिक रूप से भी हानि

आध्यात्मवादी व्यक्ति, मनुष्य के नैतिक पक्ष और आध्यात्मिक पक्ष के अतिरिक्त शारीरिक रूप से भी मनुष्य का भला ही चाहता है क्योंकि संसार रूपी यात्रा में शरीर रूपी 'रथ' अथवा 'नाव' का भी अपना महत्त्व है। आत्मा यदि 'देव' है तो शरीर 'देवालय' अथवा 'मन्दिर' है। धर्म साधने के लिए शरीर भी एक साधन है। अत: उसका स्वस्थ एवं सुदृढ़ रहना जरूरी है। प्रयोगों और निरीक्षणों द्वारा देखा गया है कि मद्यपान से शरीर के अंगों का सामंजस्य बिगड़ जाता है और मनुष्य की श्वास क्रिया, हृदय गति और रक्त-चाप (Blood Pressure) पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है और इन सभी का ठीक होना मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है, इसलिए मद्यपान का निषेध किया जाता है।

क्या शराब से सचमुच हानियाँ होती हैं?

अब कुछ लोग कहते है कि ''शराब के सब हानिकाराक प्रभाव जो

हमने बताए हैं, ये तो मद्य में अधिक अल्कोहल (Alcohol) होने से होते हैं। यदि उसमें अल्कोहल की मात्रा ही कम हो और मनुष्य उसे धीरे-धीरे और भोजन के साथ-साथ पिये तब तो उसकी चेतना पर इतना प्रभाव नहीं पड़ता। बुद्धिजीवी लोगों के कितने ही भोज (Dinner Parties) अथवा मिलन (Get-together) ऐसे होते हैं जिनमें सुरा का प्रयोग होता है। परन्तु हम देखते हैं कि उसमें प्राय: लोगों का तो मानसिक सन्तुलन बना ही रहता है और वे कोई अनाप-शनाप नहीं बोलते। अनेक राजनीतिक समारोहों में बड़े-बड़े नेता शराब पीते हैं और वे महत्त्वपूर्ण वक्तव्य भी देते हैं।'

वास्तव में ऐसा सोचना एक भ्रान्ति है क्योंकि यदि मस्तिष्क अथवा शरीर पर उसका कोई अच्छा या बुरा प्रभाव ही न होता हो तो मनुष्य पैसे खर्च करके उसे क्यों पीता? जिन्होंने इस विषय में प्रयोग एवं परीक्षण किये हैं, उनका कथन है कि यदि सुरापान के परिणामस्वरूप मनुष्य के खून में अल्कोहल का स्तर ०.०५% से कम हो तो वह सुस्त-सा अनुभव करता है। यदि ०.०५% से ०.१% तक हो तो वह पुरुष अपने कार्यों में, साहसी व क्रियाशील देखने में आता है परन्तु वास्तव में उसका यह साहस और उसकी यह क्रियाशीलता, उसके हल्के नशे व भावुकता की स्थिति के कारण होते हैं। तभी तो ऐसी अवस्था में ऐसे लोग स्त्रियों की ओर आकर्षित होते हैं ओर तनिक उकसाहट की अवस्था में होते हैं। अगर रक्त में अल्कोहल का स्तर ०.१% से ०.२% तक हो जाए तो मनुष्य अपने कार्य से होने वाले परिणाम को गम्भीरता से नहीं सोचता और दु:साहस करता है तथा अपनी आर्थिक, शारीरिक और सामाजिक स्थिति से बढ़-चढ़कर बातें

करता, बड़े कारनामे कर दिखाने का दम भरता, अनुचित कर डालता या शेखी बघारता है। यदि रक्त में अल्कोहल की मात्रा ०.२% से ०.३% तक हो तो मनुष्य की बुद्धि का उसके विचारों पर अंकुश नहीं रहता और वह कर्मेन्द्रियों का संयम खो-सा बैठता है। यह एक ऐसी दशा है जिसमें और जिससे आगे खतरनाक परिणाम होने की सम्भावना बनी रहती है। यदि रक्त में अल्कोहल का स्तर ०.४% हो जाए तो मनुष्य ऐसी हरकतें करता है जिससे दूसरे लोग परेशान हो जाते हैं। घर अथवा भोजन-स्थान का वातावरण बिगड़ जाता है और अड़ोसी-पड़ोसी भी तमाशा देखते हैं। जब इसका स्तर ०.५% हो जाता है तब वह व्यक्ति सुध-बुध भूल ज़ाता है। वह अपने को कुछ-का-कुछ समझता है, खूब नशे में चूर होता है। तब वह चीजों को उल्टता-पुल्टता, लोगों को डाँटता-डपटता और ऊट-पटांग बात करता है। जब इसका स्तर ०.६% हो जाता है तो प्राय: मनुष्यों को होश-हवास ही नहीं रहता। वे लड़खड़ाते हुए, गिरते-पड़ते से चलते हैं और यदि ऐसी अवस्था में वे रास्ते पर चल रहे हों तो उनकी दुर्घटना होने का डर रहता है। यदि अल्कोहल का स्तर ०.७% हो तब तो कुदरत ही खैर करे? इस प्रकार, स्पष्ट है कि शराब में जो अल्कोहल है, जिसके प्रभाव से ही मनुष्य को नशा होता है और जिसके कारण ही लोग शराब पीते हैं, कोई स्वास्थ्यकर पेय (Drink) नहीं, क्योंकि, चाहे उसका स्तर कुछ भी हो, वह मनुष्य के मस्तिष्क को थोड़ा-बहुत तो प्रभावित करती ही है। फिर, ऊपर राजनीतिक संगठनों के अवसरों पर जो महत्त्वपूर्ण वक्तव्य देने की बात कही गई है, उनके बारे में सत्यता तो यह है कि वे वक्तव्य तो पहले से

ही तैयार किये गये होते हैं और मद्यपान तथा भोज से पहले ही दिये जाते हैं और उसके बाद भी वे बहुत हल्का ही मद्यपान करते हैं और फिर उसका भी कुछ तो प्रभाव उन पर पड़ता ही है।

हाँ, अल्कोहल की मात्रा का प्रभाव एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति पर, किन्हीं कारणों से, थोड़ा कम-ज्यादा होता है और जो लोग इसे बहुत हल्की मात्रा में लेते हैं और खाली पेट न लेकर भोजन के साथ लेते हैं और हर आये दिन लेते रहते हैं, इन अभ्यस्त लोगों पर इसका प्रभाव तुलनाकृत कुछ कम होता है, परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनके भी मस्तिष्क के गोलार्द्धों पर, उनकी श्वास-क्रिया पर, रक्त-चाप पर, यकृत (Liver) तथा आमाशय पर प्रभाव पड़ता अवश्य है। **जो चीज़ भोजन का अंग नहीं है, शरीर पर उसका प्रभाव अवश्य ही थोड़ी-बहुत हानिकर ही प्रतिक्रिया लिए हुए होगा** – यह निश्चित है। हाँ, वह प्रभाव अभी मालूम हो या बाद में कभी और वह ज्ञात हो या अज्ञात, विज्ञान ने उसे खोज डाला हो या वह अभी उसे न जान सका हो। सिग्रेट इसका एक उदाहरण है। पहले शरीर-विज्ञान को इसके बुरे परिणामों का इतना स्पष्ट रीति से ज्ञान नहीं था। डी॰ डी॰ टी॰ (D.D.T.) के बुरे परिणामों का भी वैज्ञानिकों को पहले कहाँ पता था? इसी प्रकार, कितनी ही औषधियों के बुरे परिणामों का भी तो चिकित्सकों को बाद में ही मालूम हुआ। अत: यद्यपि सुरा को लोग एक पेय (Drink) कहते हैं और यद्यपि खाने की वस्तु न होकर पी ही जाने वाली होने के कारण 'पेय' ही है तथापि वास्तव में सही अर्थ में यह एक पेय (Drinkable) है नहीं। लोगों ने नाम इसका 'सुरा'

रखा है परन्तु है यह 'असुरा' क्योंकि इससे मनुष्य की दैवी सम्पदा का विकास नहीं होता बल्कि उसमें अनैतिकता ही पनपती है।

अत: सभी बातों पर विचार करते हुए हम इसी निर्णय पर पहुंचते हैं कि मद्यपान वैज्ञानिक तथा नैतिक – दोनों आधारों पर मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क, मन, बुद्धि और उसकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए हानिकारक है।

मद्यपान का प्रभाव विवेक तथा निर्णय शक्ति पर

बहुत बार कहा जाता है कि ''शराब पीने वाले सभी लोग निर्णय शक्ति और मानसिक सन्तुलन से रहित तो दिखाई नहीं देते। क्या हम समुन्नत देशों में नहीं देखते कि वहाँ के लोग प्राय:नित्य शराब पीते हैं और फिर भी वे नई-नई वैज्ञानिक खोजें करते हैं, व्यापारिक उन्नति करते तथा अनेक प्रकार के उच्च बौद्धिक कार्य करते हैं? यदि शराब का निश्चित रूप से बूरा ही प्रभाव होता तब तो उन देशों में बाज़ारों में लड़खड़ाते हुए ही लोग देखने में आते और जगह-जगह झड़पें और मुठभेड़ ही देखने को मिलतीं.....।''

प्रश्न ठीक है। परन्तु ऐसा प्रश्न करने वाले लोग प्राय: वहाँ की स्थिति से या तो पूरी तरह परिचित नहीं हैं और या उस पर वे गम्भीरता से विचार नहीं करते! हम पुछते हैं– क्या वहाँ पर शराब पीने से अधिक कार दुर्घटनाएँ (Car accidents) नहीं होतीं? क्या समाचार-पत्रों में ये समाचार नहीं छपते कि शराब के परिणामस्वरूप बढ़ती दुर्घटनाओं को कम करने के लिए कारों में ड्राइवर की सीट के सामने ऐसे यन्त्र लगाने की व्यवस्था हो रही है कि ड्राइवर को अपनी स्थिति का पता लग जाये और वह कार रोक ले या ड्राइवर के श्वास में अल्कोहल के प्रभाव से कार स्वत: ही रुक जाए? क्या यह शराब का प्रभाव नहीं कि वहाँ वैज्ञानिक, राजनीतिक नेता, सैनिक अधिकारी तथा सैनिक अस्त्र-शस्त्र बनाने वाले उद्योगपति और प्रशासक मिल कर सारे भूमण्डल के विनाश के लिए, मानव-मात्र की हत्या के लिए,देश-विदेश के विध्वंस के लिए, स्वयं अपने परिवार, अपने वंश

पर भी अटल खतरा मोल लेकर एटम बम तथा अन्य ऐसे अस्त्र-शस्त्र बनाने के लिए लगे हुए हैं? स्पष्टत: मौत का साधन रचते हुए भी इन्हें मौत दिखाई नहीं देती या दिखाई देते हुए भी वे उसकी ओर बढ़ने की योजना बनाते हैं! क्या ये बुद्धिमता (Wosdom) का चिन्ह है? क्या लड़ाई और वह भी इस तरह की लड़ाई, शान्त और सन्तुलित तन की देन है? जिसके निर्माण से सारी सभ्यता ही नष्ट हो जाये और न हम रहें न दूसरे, अस्त्र-शस्त्र को और अधिक बनाते जाने का निर्णय क्या स्वस्थ निर्णय शक्ति का परिणाम है या यह किसी मानसिक रोग का चिन्ह (Symptoms) है? इसे बचाव (Defence) के लिए आवश्यक माना जाना, जबकि इससे बचाव या सुरक्षा का कोई तरीका ही नहीं, बल्कि सर्वनाश ही इसका एक मात्र 'फल' है, क्या सही चेतना तथा सही होश– हवास (Sanity) है? जबकि करोड़ों लोग भूखे मर रहे हैं, तब खरबों डालर इस विनाश-सामग्री की तैयारी पर लगाये चले जाना– क्या इसी का नाम नैतिकता है? क्या मनुष्यों द्वारा ऐसे आविष्कार किसी सन्तुलित मन की उपज है या ये ऐसी दशा के चिह्न हैं जो मानव-मात्र की आत्म-हत्या की तैयारी में हों?

पारिवारिक जीवन छिन्न-भिन्न होने का एक कारण है —शराब

फिर, वहाँ के पारिवारिक जीवन इस 'शराब खाना खराब' के कारण किस प्रकार छिन्न-भिन्न हो चुके हैं! क्लबों में शराब पीकर वे पर-स्त्रियों से जिस प्रकार के हाव-भाव प्रकट करते हैं और जीवन में जिस प्रकार एक तलाक, दूसरा तलाक, तीसरे तलाक तक के विभिन्न कारण बन जाते हैं, क्या उससे यह प्रमाणित नहीं होता कि उनका अपने व्यवहार पर नियन्त्रण

नहीं, उनकी वाणी शराब के नशे में बेकाबू हो जाती है? क्या छोटी-मोटी बातों में तनाव (Tension) होने की स्थिति इस बात का चिन्ह नहीं है कि शराब ने उनके मस्तिष्क में भावावेश की स्थिति बना डाली है? यदि शराब से मनुष्य की निर्णय शक्ति और उसका मानसिक सन्तुलन कायम रहता होता तो भारत सरकार ने यहाँ के उच्च न्यायालयों व सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिए यह आदेश क्यों निकाला था कि न्यायाधीश पद की नियुक्ति के लिए वह व्यक्ति मद्यपान न करता हो। भारत सरकार ने यहाँ देहली में ही स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े बोर्डों पर क्यों लिखवा रखा है कि शराब विष है। यहाँ लोग क्या यों ही कहते हैं कि ट्रक के कई ड्राइवर शराब पीकर ट्रक चलाते हैं और उनके इस कुकृत्य के कारण कई दुर्घटनाएं हो जाती हैं?

हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि उन्नत देशों (Advanced Countries) ने जो प्रगति की है वह उनकी शिक्षा के कारण और उनके वहाँ शोध कार्य (Research Work) के लिए दी गई सहूलियतों के फलस्वरूप है। शिक्षा के फल को शराब का फल मानना तो सरासर भूल है। उच्च शिक्षा से वे नये-नये आविष्कार करते हैं, उनसे नई-नई चीजें बनाते हैं, बड़े-बड़े कारखाने खोलते हैं, उन कारखानों में बनी वस्तुओं को विश्वभर में बेच कर खूब पैसा कमाते हैं, उस पैसे को फिर शिक्षा और शोध-कार्य पर काफी खर्च करते हैं और इससे और अधिक भौतिक प्रगति करते हैं। परन्तु शराब पीने या मद्यपान से होने वाले भावावेश तथा असंयम के परिणामस्वरूप पारिवारिक जीवन में स्नेह का अभाव, मन की अस्थिरता, इन्द्रियों का स्वच्छन्द व्यवहार, भोग-प्रियता आदि भी इसके कारण हैं। तभी

तो वे आज शराब के अतिरिक्त दूसरे-दूसरे नशीले द्रव्य (Drugs) भी प्रयोग करने लगे हैं तथा निवारण के लिए भारतीय धर्मों की ओर भी झुकाव प्रदर्शित करते हैं यद्यपि स्वयं भारतीय धर्म भी आज अपनी आदिम, शुद्ध स्थिति में नहीं हैं। अत: उन्नति को शराब के साथ मिला देना तो अपने ही मस्तिष्क की अव्यवस्थिता प्रकट करना है, शराब का मेल तो भावावेश, स्वभाव की क्रूरता, नैतिकता के ह्रासा तथा सुन्दर और प्राकृतिक वस्तुओं की भोग-लिप्सा से है जो हम स्पष्ट वहाँ देखते हैं।

क्या मद्यपान न करने वालों में ये बुरी आदतें नहीं हैं?

इसी प्रसंग में पूछा जा सकता है कि – ''क्या जो लोग शराब नहीं पीते, वे इन सब बुरी आदतों से बचे हुए हैं? क्या हम नहीं देखते कि मद्य को कभी हाथ न लगाने वालों में भावावेश होता है, उनका भी अपनी वाणी और अपने व्यवहार पर नियंत्रण नहीं होता, वे भी बात-बात में गाली-गलौच देते हैं, वे भी खूब लड़ाई-झगड़ा करते हैं.....।

हाँ, मद्य को स्पर्श न करने वाले भी अनेकानेक लोगों में ये दुर्गण होते हैं। हमारे कथन का यह भाव कदापि नहीं था कि ये दुर्गुण केवल शराब रूप दुर्व्यसन से या पेय से होते हैं। शराब तो ऐसे बुरे व्यक्तित्व का एक कारण है, इसके अतिरिक्त कारण तो और भी बहुत हैं। कुछ प्रभाव तो ऐसे हैं जो विशेष तौर पर शराब ही का दुष्परिणाम हैं। उदाहरण के तौर पर अधिक मात्रा में मद्यपान के परिणामस्वरूप लड़खड़ाना, इस अवस्था में विवेक को काफी हद तक खो बैठना आदि और व्यक्तित्व की कुछ बुराइयाँ ऐसी हैं जो शराब से भी तथा अन्य व्यसनों या कारणों से भी होती हैं। मनुष्य को

उनसे भी बचना चाहिए। उदाहरण के तौर पर कुसंग, घटिया साहित्य आदि भी उसके कुछ कारण हैं। फिर, हमने तंत्रिका तन्त्र,यकृत, हृदय, श्वास-क्रिया, रक्तचाप आदि पर मद्यपान के जो बुरे प्रभाव बताये हैं, वे तो वैज्ञानिक परीक्षणों से भी सिद्ध ही हैं। रात को मद्यपान के फलस्वरूप दूसरे दिन सिर में दर्द और बदन का टूटना, मद्यपान के परिणामस्वरूप अनिद्रा रोग, दिल की धड़कन तेज होना, रक्त-चाप बढ़ना, बार-बार मुँह सूखना, गुर्दे पर अधिक दबाव, स्मरण शक्ति का ह्रास, तंत्रिका रोग, (Peripheral neurotis) जो कि शरीर में थायमीन तथा विटामिन 'बी' की कमी के कारण होते हैं, आमाशय की गड़बड़ी (गैस्ट्रीटीज), जो कि अल्कोहल के कारण आमाशय में जलन पैदा होने तथा उसकी भीतरी त्वचा में सूजन पैदा होने से होता है, यकृत में कठोरता (सिरोसिस), रोगों से लड़ने की शक्ति में कमी (Lack of resistance to disease) आदि कई शारीरिक हानियाँ होती हैं।

क्या सुरा से लाभ कोई भी नहीं होता?

शराब का पक्ष लेने वाले ऐसे भी जन हैं जो कहेंगे– ''आपने तो शराब में सभी बुराइयाँ ही बताई हैं। इसमें कोई तो अच्छाई भी होगी ही वरना लोग इसे पीते क्यों हैं?''

''हमारा मन्तव्य तो यह है कि लोग इसे अज्ञानतावश और असहाय होकर पीते हैं। संसार में शराब के कुछ अच्छे गुण बताये जाते हैं परन्तु वास्तव में वे आज के विज्ञान की दृष्टि में भ्रान्ति ही पर आधारित हैं, उदाहरण के तौर पर कुछ लोग कहतें हैं कि शराब पीने से शक्ति मिलती

है और उसके फलस्वरूप मनुष्य को अधिक देर तक थकावट नहीं होती और वह उत्साह और उमंग से कार्य करता रह सकता है।''

क्या मद्यपान से शक्ति बढ़ती है और थकावट नहीं होती?

वास्तव में शराब पीने से मनुष्य को जो नशा-सा आ जाता है, उसके कारण उसे थकावट महसूस नहीं होती। थकावट न होना अलग बात है और थकावट का सहसूस न होना दूसरी बात है। शराब से थकावट दूर नहीं होती, न ही अतिरिक्त शक्ति (Additional Energy) मिलती है, बल्कि तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System) पर इसका जो प्रभाव पड़ता है, उसके परिणामस्वरूप कुछ देर तक थकावट का सहसूस होना टल जाता है। इसलिए मनुष्य अपने कार्य में लगा रहता है। परन्तु बाद में उसे उतना ही अधिक विश्राम भी करना पड़ता है और अधिक काम करने का मुआविजा चुकाना पड़ता है।

इसी प्रकार, शराब पीने के बाद जो उत्साह देखने में आता है, वह वास्तव में भावुकता के ही कारण से होता है, यह कोई स्थायी सद्गुण नहीं है, न ही कोई सात्विक एवं पौष्टिक भोजन का परिणाम है बल्कि वह तो क्षणिक भावावेश ही के कारण से होता है।

क्या ठंडे इलाकों में मद्यपान आवश्यक है?

इसी प्रकार लोगों में एक भ्रान्ति यह भी है कि मद्यपान से मनुष्य शीत के प्रभाव से सुरक्षित रहता है। अत: वे कहते हैं कि ''शीतप्रधान देशों में तो उसका पीना आवश्यक अथवा लाभकर है।'' परन्तु वास्तविकता यह है

कि मद्यपान करने वालों को सुरापान के तत्काल बाद त्वचा (Skin) की रक्त-नलिकाओं में एक प्रकार की सनसनी या गुनगुनेपन का अनुभव होता है। मालूम तो ऐसा होता है कि शरीर में गर्मी बढ़ गयी है किन्तु वास्तव में वह त्वचा में गर्मी के कम होने का चिन्ह होता है। अल्कोहल से भी कुछ उष्णता पैदा तो होती है परन्तु वह तो पाचन प्रक्रिया के बाद ही होती है। अत: तत्काल ही कथित उष्णता के धोखे में कई लोग ठंड से बचने का उपाय नहीं करते और शरीर की सहन-शक्ति कम होने के कारण वे सर्दी का शिकार हो जाते हैं और बाद में कहते हैं कि हम ठण्डक से ग्रस्त (expose) हो गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मद्यपान से अनेकानेक हानियाँ हैं। हो सकता है कि कोई व्यक्ति अपने परिवारजनों से मिल कर पहले शौकिया ही इसे पीना शुरू करे और उसमें पहले-पहल बहुत बुरा प्रभाव देखने में न आये परन्तु धीरे-धीरे मनुष्य को ऐसी आदत पड़ जाती है कि वह उसे छोड़ नहीं सकता। पुनश्च, आज किसी व्यक्ति की आर्थिक, सामाजिक या अन्य परिस्थितियां ऐसी भी हो सकती हैं कि उसका मन अशान्त हो और वह मदिरा की मात्रा को बढ़ा ले। एक बार लत पड़ जाने पर तो मनुष्य उसकी मात्रा बढ़ाता ही है; प्राय: घटाता कोई नहीं है।

बुरी आदत से छूटना ही भला

परन्तु खेद की बात है कि कुछ लोगों का विवेक ऐसा तो नष्ट हो जाता है कि वे बुरी आदतों के परिणामों को न देख कर मद्यपान की आदत को किसी-न-किसी जायज़ या नजायज़ आधार पर जारी रखना चाहते हैं।

वे कहते हैं कि "मद्यपान तो प्राचीन काल में भी लोग करते थे; तब मद्य को 'सोमरस' कहा जाता था। उस काल के लोग इन्द्र को भी सोमरस का अर्घ्य देते थे। पुराने ग्रन्थों में सोमरस का वर्णन मिलता है....।"

वस्तुत: यह मत भी भ्रान्तियों पर ही आधारित है। वास्तव में 'सोम' शब्द 'अमृत' का पर्यायवाची है। परमात्मा शिव को 'सोमनाथ' या 'सोमेश्वर' भी कहा गया है। उनका यह नाम मद्यपान के कारण से तो नहीं है बल्कि यह तो 'ज्ञान रूपी अमृत' के कारण है। 'सोम' शब्द 'चन्द्रमा' के लिये भी प्रयुक्त होता है। इसलिये जिसे अंग्रेज़ी में 'मन्डे' (Monday) कहते हैं, उस दिन को संस्कृत तथा हिन्दी में 'सोमवार' कहा जाता है। अत: जैसे चन्द्रमा रात्रि के अन्धेरे में प्रकाश देता है, वैसे अज्ञानान्धकार में ज्ञान रूपी चांदनी देने वाला या अमृत-वर्षा करने वाला होने के कारण भी परमात्मा को 'सोमनाथ' कहा जाता है। इस भाव को न जानने के कारण 'सोम'-रस को 'ज्ञान-रस', जो कि मनुष्य को 'एक-रस अवस्था' (समावस्था) में टिकाता है, न मान कर एक प्रकार का मद्य मानना अर्थ का अनर्थ करना है।

हाँ, ज्ञान भी मनुष्य की चेतना को प्रभावित तो करता है। वह मनुष्य को एक प्रकार के नशे की स्थिति में ले तो आता है। उस अलौकिक नशे को कई लोग 'नारायणी नशा', अन्य कई 'मौलाई मस्ती' और दूसरे लोग 'नाम खुमारी' आदि-आदि नाम देते हैं। अत: ऐसी मस्ती प्रदान करने वाला होने के कारण बाद के लोगों ने उसे भी एक प्रकार की मदिरा ही मान लिया होगा। परन्तु ज्ञान रूपी सोम-रस तो वास्तव में ऐसा रस है जो मद्यपान को

सहज ही छुड़ा देता है। चूँकि वह 'असुर' के 'सुर' बनाने वाला आध्यात्मिक पेय' (Drink) है, इसलिए ही वह 'सुरा' भी है जो कि अल्कोहल वाली सुरा की गुलामी से सदा के लिए मुक्त करा देती है। बाद में जब लोग देहाभिमानी हुए तो ज्ञान रूप अमृत का पता न होने के कारण उन्होंने जैसे रासायनिक तौर पर (Chemically) अमृत (Elixir) या आबे-हय्यात बनाने की कोशिश की, वैसे ही नशा देने वाले किसी रसायन को भी बनाने के लिए प्रयोग किये। हमारे इस कथन का प्रमाण विज्ञान का इतिहास (History of Science) है। इसी खोज के दौरान उसे कोई ऐसी जड़ी-बूटी या कोई ऐसी रासायनिक विधि हाथ लगी होगी कि जिससे उसने नशा देने वाला पेय बना डाला होगा और प्राचीन काल से प्रसिद्ध 'सोम-रस' या 'सुरा' के नाम को लेकर, अब निर्मित रसायन को यह नाम दे दिये होंगे । आज भी 'आर्य भट्ट', 'भास्कर' आदि नाम – जैसे वैज्ञानिकों के नाम पर रखे गये हैं और कई आविष्कारों के नाम पहले किसी काल में उन गुणों वाले किसी पदार्थ के नाम को लेकर रखे जाते थे, वैसे ही उन्होंने भी 'सुरा' और 'सोमरस' ये नाम रख लिये होंगे, वर्ना प्राचीन काल के लोग, जिन्हें श्रेष्ठ कर्मों के कारण देवता कहा जाता है, ऐसे भ्रष्ट पेय का पान तो कर नहीं सकते थे। बल्कि वास्तविकता तो यह है कि 'सुरा' और 'सोमरस' और उससे होने वाले नशे के बारे में भी यह गलत धारणा बना कर लोगों ने देवताओं के बारे में भी यह गलत धारणा बना ली कि वे मद्यपान करते थे! इस विषय में प्रसिद्ध कवि शेक्सपियर के इस वाक्य को उद्धृत करना उपयोगी होगा जो उस द्वारा लिखित ओथैलो (Othello)

नामक नाटक में मिलते हैं – ''हे सुरा के अदृश्य तत्व! अगर तेरा अन्य कोई नाम न हो तो तुझे शैतान की संज्ञा दी जा सकती है।'' अब विचारवान व्यक्ति सोचें कि देवताओं का इस शैतान से भला क्या मेल! इसी शराब के बारे में कुर्रान शरीफ में लिखा है कि —''अंगूर के प्रत्येक दाने में शैतान वास करता है'' क्योंकि तब अंगूरों से ही शराब बना करती होगी।

इसी प्रकार, सभी धर्मों के स्थापकों ने मद्यपान का निषेध किया है। तब भला दिव्य धर्म में जो स्थित होने के कारण 'देवी' और 'देवता' कहलाते थे, वे मद्यपान कैसे करते होंगे?

प्राचीन काल में शराब का प्रयोग नहीं था

सभी पुराने ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा पुराकाल के अवशेषों के अध्ययन से पता चलता है कि शराब या रासायनिक तौर पर बनाई गई सुरा 2400 या 2500 वर्षों से पहले की बात नहीं है। मिस्र के जो शिलालेख या शिल पर चित्र मिलते हैं या जिन भारतीय ग्रन्थों में सुरा का उल्लेख है, उनमें से कोई भी इससे पुराना नहीं है। इसका अधिक प्रचलन तो वास्तव में मुसलमान रसायन-वेत्ता 'जाबिर इब्न हय्यान' द्वारा मद्य बनाने के बाद ही शुरू हुआ। भारत में तो कोई विरला 'म्लेच्छ' कहलाने वाला व्यक्ति कभी इसका पान किया करता होगा। इस विषय में फ्रांसिसी यात्री बर्नियर के निम्नलिखित वाक्य उद्धृत करना ठीक होगा जो उसने सन् १९५८ में अपनी भारत यात्रा के बाद लिखे थे–

''शराब यहाँ मनोरंजन के लिये ही प्रयोग होती है, परन्तु दिल्ली की यह किसी दुकान पर उपलब्ध नहीं हो सकती। यहाँ पर सभी बुद्धिमान एवं समझदार

लोग पवित्र जल ही पीते हैं जिस पर मानो कुछ भी खर्च नहीं होता और जिससे कोई हानि भी नहीं होती। सच तो यह है कि गर्म जलवायु वाले इस देश में बहुत कम ही लोग मद्यपान करने की इच्छा करते हैं। इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं है कि भारतीय लोग अनेक बुरी आदतों से अपरिचित हैं और इसका कारण उनकी शालीनता है.... ।''

अत: हमें मालूम होना चाहिये कि भारत में मद्यपान का रिवाज मुख्यत: मुसलमान शासकों के शासनकाल में प्रारंभ हुआ। मुसलमान शासकों में से भी पहले, शासक वर्ग शराब नहीं पीता था क्योंकि कुरान में इसके लिए निषेध है। बाद में ही उनके राजघराने में इसका प्रचलन हुआ। इसका अधिक प्रचलन तो अंग्रेजों की इस्ट इण्डिया कम्पनी के दिनों में हुआ। उसने ही पहले-पहल सन् १७९० में आबकारी से सम्बन्धित व्यवस्था के लिए कानून बनाये। उसने शराब बनाने और बेचने के ठेके दिये। जिन्होंने ऊँची बोलियाँ (Bids) देकर, महंगे दाम पर ठेके दिये, उन्होंनें अपने ऐजेन्ट (Salesmen and agents) नियुक्त किये जिन्होंने हर प्रकार से शराब की खपत को बढ़ाया। लोगों को शुरू-शुरू में मुफ्त शराब दे-दे कर भी उन्हें शराब पीने की आदत डाली गयी। इस प्रकार शराब का प्रचलन बढ़ता गया और इस घोर कलीकाल में मद्यपान भी मनुष्य के नैतिक पतन का एक और कारण बन गया।

फिर महात्मा गाँधी के नेतृत्व में ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में मद्य-निषेध अथवा नशाबन्दी का कार्यक्रम भी सम्मिलित किया। गाँधी जी मद्यपान के कट्टर विरोधी थे और वे इसे अनेकानेक बुराइयों का बीज मानते थे। उनके निम्नलिखित शब्द इस बात

के प्रमाण हैं-

''अगर कभी भारत की शासन सत्ता मेरे हाथ में आई तो मैं प्रथम आधे घण्टे में समस्त शराब की दुकानें बन्द करवा दूगाँ और उसके बदले में रकम (मुआविजा) भी नहीं दिलाऊँगा। मैं मद्यपान को चोरी, वेश्यावृत्ति से अधिक हानिकारक मानता हूँ। वास्तव में दोनों बुराइयों का जन्म इससे ही होता है।''

इसी प्रकार, डा॰ राजेन्द्र प्रसाद, रविन्द्रनाथ टैगोर, डा॰ राधाकृष्णन, पं.जवाहरलाल नेहरू आदि सभी तत्कालीन अग्रगण्य स्वतन्त्रता सेनानियों ने मद्यपान का इस प्रकार जोरदार शब्दों में निषेध किया है परन्तु हम यहाँ स्थानाभाव के कारण उन सभी को उद्धृत नहीं कर रहे। स्वतन्त्रता के बाद हमारे देश के संविधान[१] में भी इसके बारे में निर्देश है। परन्तु अफसोस है कि आज भारत के विभिन्न प्रदेश यह बहाना बनाकर कि ''मद्य पर प्रतिबन्ध लगाने से (१) सरकारी आय में काफी कमी होगी और उसके परिणामस्वरूप कई विकास-योजनायें धन की काफी कमी के कारण रुक जायेंगी और (२) सरकारी तौर पर प्रतिबन्ध लगने के परिणामस्वरूप लोग घटिया प्रकार से शराब बनायेंगे और उसका प्रभाव पीने वालों के स्वास्थ्य पर बुरा पड़ेगा''– इस प्रकार की थोथी बातें करके सरकार इस पर प्रतिबन्ध नहीं लगाती।

इन सबका परिणाम यह है कि यद्यपि भारत राजनीतिक तौर पर अंग्रेज़ों की गुलामी से मुक्त हो गया है तथापि वह उन द्वारा लायी गई ऐसी बुराइयों

१. यह संविधान के आर्टिकल ४७ में प्रादेशिक सरकारों के लिए निर्देशों में है।

की गुलामी से मुक्त नहीं हुआ।[२] इससे भारत के प्राचीन नैतिक मूल्यों का ह्रास ही हुआ है और घर-घर मयखाना बनता जा रहा है। शराब और कबाब ने भारत को 'देवालय' से 'वेश्यालय' बना दिया है।

हममें से अनेकों ने अपने बचपन में कितने ही घरों में शराब के कारण झगड़े देखे होंगे। जिस घर में पति शराब पीता है, उस घर में महिला को उसका विशेष दु:ख भोगना पड़ता है। अत: इसे छोड़ना चाहिए।

परमप्रिय परमपिता का सन्देश

ऐसी धर्म-ग्लानि की स्थिति में अब परमपिता परमात्मा शिव, प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा कहते हैं – ''हे वत्सो! अब मद्य पीना और पिलाना बन्द करो! अब उठो और मुझसे भर-भर कर ज्ञानामृत का प्याला पियो जिससे स्थायी मस्ती और रूहानी नशा प्राप्त होगा और जन्म-जन्मान्तर दु:ख, अशान्ति तथा चिन्ता का नाम-निशान भी नहीं रहेगा। हे वत्स! तुम तो देवता थे और अब ज्ञान रूपी सोम अथवा अमृत पीकर पुन: अमर देवता पद प्राप्त करो, इन्द्रियों को जीत कर इन्द्रपद प्राप्त करो। ईश्वरीय योग ऐसे आनन्द को देने वाला है कि जिससे कभी भी रंच भी क्लेश का प्रवेश जीवन में नहीं होता। अब शराब रूपी भोग को छोड़ कर योगी बनो! तुम इस शरीर रूपी देवालय में वास करने वाले देवता हो; अब से इस निकृष्ट वस्तु को अपने मुँह से न लगाओ।

---

२. महात्मा गाँधी ने कहा था कि स्वराज्य के चार स्तम्भों में से एक मद्यपान है।

धूम्रपान या विषपान?

आज हम रेलगाड़ी में, बस में या हवाई जहाज में, जहाँ भी बैठे हों, वहाँ हमारे निकट बैठे लोग सिग्रेट या बीड़ी निकाल कर, उसे सुलगा कर कश लगाना शुरू कर देते हैं! एक समय था जब रेल के डिब्बों में लिखा रहता था कि 'सिग्रेट पीना मना है' अथवा 'धूम्रपान वर्जित है'। कुछ वर्षों के बाद इसे हटा कर यह लिख दिया गया कि ''यदि दूसरे यात्री मना करें तो धूम्रपान न करें।'' परन्तु आज हालत यह है कि ऐसे निर्देशों की कौन परवाह करता है! स्थिति ऐसी होती जा रही है कि सिग्रेट आदि पीने वालों की संख्या, न पीने वालों से अधिक न सही समतल तो होती जा रही है। अत: यदि नम्रतापूर्वक भी कोई मनुष्य अपने पास बैठे हुए व्यक्ति से सिग्रेट न पीने के लिए निवेदन करता है तो पास में बैठे हुए दूसरे यात्री, जिनमें से कुछ ऐसे लोग भी शामिल होते हैं जो सिग्रेट-बीड़ी पीने की आदत वाले ही हैं परन्तु उन्होंने अभी उसे जेब से निकाल कर मुँह को नहीं लगाया होता, कह उठते हैं– ''साहब, अभी तो यात्रा शुरू हुई है; लम्बी यात्रा है, यह बेचारा कब तक सिग्रेट नहीं पियेगा? आप को कोई एतराज हो तो आप ही थोड़े समय के लिए किसी दूसरी सीट पर चले जाइये....।'' यदि आप उनका ध्यान गाड़ी में लिखे हुए निर्देश की ओर दिलाएँ तब तो बात ही बिगड़ जाती है और लोग कह उठते हैं कि – ''ठीक है, कण्डक्टर को जाकर कह दीजिए, हम सिग्रेट को छोड़ नहीं सकते....।'' कण्डक्टर स्वयं ही प्राय: सिग्रेट पीने वाला व्यक्ति होता है, तब किया ही क्या जा सकता है? सच कहा गया है कि जब एक बुरी आदत पैदा हो जाती है तो उससे और भी बुरी आदतें बन जाती हैं और फिर सब को मिलाकर एक ऐसी

फौलादी जंजीर बन जाती है जिसमें जकड़ा हुआ मनुष्य स्वयं को नहीं छुड़ा सकता। थोड़े ही शिष्ट लोग ऐसे होते हैं जो हमें नाक पर रुमाल रखते देख कर कहते हैं– ''ओहो, आपको यह धुआँ अच्छा नहीं लग रहा! हम थोड़ी देर के लिए दूसरी जगह चले जाते हैं....।''

सिग्रेट में चौबीस विष

बात केवल इतनी ही नहीं कि सिग्रेट का धुआँ हमें अच्छा लगता है या बुरा। बात तो यह है कि तम्बाकू में २४ घातक विष हैं। फरवरी ११,१९६५ को भारत सरकार द्वारा प्रकाशित एक पत्रिका में इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया था। संक्षेप में हम २४ में से १० प्रकार के विष के नाम तथा उनसे होने वाले रोगों के नाम नीचे दे रहे हैं –

१. निकोटीन विष (Nicotine) – इससे तथा तम्बाकू द्वारा होने वाली उत्तेजना से होठों, जिह्वा, भोजन-प्रणाली तथा कण्ठनली (Larynax) इत्यादि में कैंसर रोग (Cancer) होने की संभावना होती है। देखा गया है कि जिन पुरुषों को इन-इन स्थानों पर कैंसर का रोग हुआ, उनमें ७५% से लेकर ९१% तक रोगी धूम्रपान करने वाले थे। पुनश्च, इस विषय का रक्त पर भी बुरा ही प्रभाव पड़ता है।

२. कार्बन मोनोआक्साइड तथा सॉयनाइड विष (Carbon Monoxide and Cyanide) – इन दोंनों से श्वास सम्बन्धी रोगों, तथा दमा आदि से मनुष्य पीड़ित होता है। इनका प्रभाव नसों पर, विशेष तौर पर आँखों से सम्बन्धित नसों एवं तंत्रिकाओं (Optic nerves) पर बुरा पड़ता है और उसके परिणामस्वरूप धीरे-धीरे मनुष्य की आँखों की रोशनी

कम होने लगती है, यहाँ तक कि उसके अन्धे होने की सम्भावना भी होती है।

३. मार्श गैस विष (Marsh Gas) – इसका व्यक्ति के पुरुषत्व पर बुरा प्रभाव पड़ता है और यदि माता भी धूम्रपान करती हो तो कमजोर बच्चा पैदा होता है।

४. अमोनिया विष (Ammonia) – इससे पाचन शक्ति बिगड़ने लगती है और इसका जिगर पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

५. पायरीडियन विष – इससे आंतों में खुश्की हो जाती है और पेट में कब्ज रहने लगता है।

६. कोलाडीन विष– इससे मनुष्य का सिर थोड़ा चकराने लगता है और नसें कमजोर पड़ जाती हैं।

7. कार्बोलिक एसिड विष (Carbolic acid) – इससे अनिद्रा, स्मरण-शक्ति का कम होना और चिड़चिड़ेपन का स्वभाव हो जाता है।

8. पेरफेरोल विष – इससे दान्त पीले,मैले और कमजोर हो जाते हैं।

9. एजालिन विष और सायनोजन विष – इससे खून खराब होता है।

10. फुरफुरल विष और प्रूसिक एसिड विष – इससे थकान, जड़ता व उदासी पैदा होती है।

इसी तरह अन्य प्रकार के विष से खाँसी, टी. बी., अन्दरूनी सूजन, लकवा तथा खून का पानी बन जाना आदि रोग होते हैं। अत:हम पड़ोस

में बैठे हुए व्यक्ति से, जो कि सिग्रेट या बीड़ी पीता है, उसके भले के लिए, अपने भले के लिए, अन्य यात्रियों के हित के लिए तथा विश्व की भलाई के लिए कहते हैं क्योंकि जिन्होंने वैज्ञानिक खोज की है वे बताते हैं कि धुएँ से केवल सिग्रेट पीने वाले को ही हानि नहीं होती बल्कि जिस पड़ोसी के श्वास में उसका धुआँ जाता है, उसे भी कैंसर आदि तक रोग होने की सम्भावना होती है। विज्ञ लोगों का कहना है कि इससे पर्यावरण प्रदूषण (Environmental Pollution) बढ़ रहा है क्योंकि सारा वातावरण (Atomosphere) तो एक ही है। अत: हम वातावरण में जो विष यहां फेंकते हैं, उसका थोड़ा-बहुत प्रभाव कुल सारे वातावरण पर पड़ता है और उससे हम सभी लोगों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से थोड़ा-बहुत दु:ख पहुंचाते हैं। स्पष्ट है कि ऐसा कर्म न केवल अपने तन के लिए हानिकारक है बल्कि विश्व-भर के अनेकानेक मानवों के लिए भी कष्टकारक है। देखा जाए तो यह एक प्रकार का अपराध है अथवा पाप है, परन्तु खेद है कि आज इस बुराई के प्रति सरकारों अथवा धार्मिक संस्थाओं का ऐसा दृष्टिकोण नहीं बना। एक रिपोर्ट में कहा गया था कि **एक सिग्रेट पीने से मनुष्य की १८ मिनट की आयु कम होती है। इतनी न भी होती हो तो यह सामान्य विवेक से भी स्पष्ट है कि धुआँ कोई पीने की चीज़ नहीं है! मनुष्य की श्वास-नली किसी कारखाने की चिमनी या घर की रसोई के धुएँकश के समान नहीं है और मनुष्य का शरीर तम्बाकू का धुआँ लेने के लिए नहीं बना हुआ!** धूम्रपान करना न केवल अपने तन की धीमी गति से हत्या करना है बल्कि दूसरों के भी दम घोंटने तथा उन्हें रोगी बनाने का

प्रयत्न करना है। यह दूसरों के अधिकार का अतिक्रमण है, दूसरो के शुद्ध वायु लेने के अधिकार को छीनने का कर्म है।

भारत के डाक्टरों के अधिवेशन में प्रस्ताव

सिग्रेट से होने वाली हानियों अर्थात् शरीर में पैदा होने वाले रोगों के बारे में हुए शोध कार्य को मान्यता देते हुए ही सन् १९६९ तथा १९७० में हुए क्रमशः ४५वें तथा ४६वें अधिवेशन में, आल इण्डिया मैडिकल कान्फ्रेंस ने सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास किया था जिसमें धूम्रपान को स्वास्थ्य के लिए हानिकारक और खतरनाक रोगों को पैदा करने वाला बताया गया था। उसी प्रस्ताव में भारत सरकार से सिफारिश की गई थी कि वह कानून बना कर अमेरिका, इटली, स्वीडन आदि की तरह सिग्रेट के हर पैकेट पर यह लिखा जाना अनिवार्य कर दे कि— "सिग्रेट आपके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।"

केवल भारत की ही मैडिकल कान्फ्रेस में नहीं बल्कि १८ मई, १९७० के विश्व स्वास्थ्य संघ (W.H.O.) ने भी सिग्रेट और तम्बाकू के विरूद्ध सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पास किया जिसका एक छोटा-सा अंश हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं:—

"२४वीं वर्ल्ड हैल्थ एसेम्बली को अपने डॉयरेक्टर जनरल की रिपोर्ट देख कर इस बात का निश्चय हो गया है कि धूम्रपान के विनाशकारी प्रभावों से फेफड़े और दिल की बीमारियाँ हो जाती हैं जिनमें कैंसर, दमा, ब्रांकाईटिस, दिल के रोग तथा अन्य रोग भी शामिल हैं।"

इसी प्रस्ताव में आगे चल कर अपने सदस्यों को सिग्रेट न पीने की

हिदायत की गयी है और डॉयरेक्टर जनरल से सिग्रैट विरोधी प्रचार के लिए अनेक उपाय करने का अनुरोध किया गया है। उसी के अनुसार डॉयरेक्टर जनरल ने जो आदेश जारी किये उनमें से एक यह भी है कि–

''कम से कम रेलों, बसों व सार्वजनिक स्थानों में धूम्रपान बन्द करना चाहिए''

परन्तु हम देखते हैं कि आज इन आदेशों, निर्देशों या उपदेशों को कोई विरला ही आचरण में ला रहा है। कई डाक्टर, जो इसके बुरे परिणामों से परिचित हैं, वह भी सिग्रेट पीते हैं। १९८० का वर्ष विश्व स्वास्थ्य संघ (W.H.O.) ने सिग्रेट के विरुद्ध प्रचार करने के लिए विशेष तौर पर कार्य करने के लिए निश्चित किया था। परन्तु उस सब के बावजूद भी कुछ थोड़े ही लोग धूम्रपान छोड़ते हैं। इसका कारण क्या है?

आदत बुरी बला है

बात यह है जब मनुष्य को कोई बुरी आदत पड़ जाती है तो उसके लिए फिर उस आदत को छोड़ना दुष्कर को जाता है। सिग्रेट पीने वाले की भी यही समस्या है। सिग्रेट पीने वाले कई व्यक्ति मानते हैं कि सिग्रेट पीना अच्छा नहीं है परन्तु उन्हें भीतर से ऐसी उकसाहट (Urge) होती है कि वे फिर पीना शुरू कर देते हैं। उनका मनोबल (Will Power) पहले ही कम हो चुका होता है। कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण कम हो चुका होता है। अत: जब तक कोई ऐसा साधन उन्हें न दिया जाए जिससे कि उनका मनोबल एवं आत्मविश्वास बढ़े और उनमें नियन्त्रण-शक्ति आए, तब तक वे

स्थायी तौर पर और सदा के लिए धूम्रपान छोड़ने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। पुनश्च, हमें यह भी देखना चाहिए कि मनुष्य सिग्रेट पीना शुरू किन हालात में और क्यों करता है? आप यदि धूम्रपान करने वाले अनेकानेक लोगों से पूछेंगे तो इसी परिणाम पर पहुंचेंगे कि या तो अशान्ति के कारण वे कश लगा कर अपने दु:ख को भुलाने की कोशिश करते हैं और या वे अपने दोस्तों के कहने से शौकिया या संग के रंग में शुरू करते हैं! अब यदि उन्हें कोई ऐसी विधि न सुझाई जाए जिससे कि उनका मन शान्त हो और आगे के लिए भी उनकी शान्ति बनी रहे तथा वे समस्याओं का सामना कर सकें तथा उनके नियमों और सिद्धान्तों पर दृढ़ रहने की ऐसी शक्ति आए कि जिससे दूसरों की वर्गलाहट में न आ जाएँ, तो सिग्रेट को सदा के लिए नहीं छोड़ सकते।

सहज राजयोग (Meditation) ही उपाय

इन सभी कारणों से ही ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग की आवश्यकता है। यदि मनुष्य राजयोग का अभ्यास करें तो उसे आत्मिक शान्ति मिलती है और वह देह-भान से न्यारा अनुभव करता है। उसके फलस्वरूप उसे शारीरिक विक्षेप और इन्द्रिय आकर्षण प्रभावित नहीं करते। उससे वह इस बुरी आदत से छूट जाता है। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय, जिसके ऐसे सुधार-केन्द्र भारत के प्राय: सभी मुख्य नगरों में हैं, की भी इस नि:शुल्क सेवा से बहुत से लोग इस आदत से मुक्त हुए हैं!

कानून की पाबंदी

आज सरकार ने कानून पास करके सिग्रेट की डिब्बियों पर यह छापना तो अनिवार्य निश्चित किया हुआ है कि 'सिग्रेट स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है'। परन्तु सिग्रेट के कारखानेदार उसे बहुत ही छोटे अक्षरों में छपवाते हैं ताकि लोगों का ध्यान उस ओर न जाए तो अच्छा है। वे समाचार-पत्रों में अपने बड़े-बड़े विज्ञापन छपवाते हैं और उनमें ये शब्द बहुत ही छोटे-अक्षरों में लिखते हैं; यह भी कानून का क्या मजाक है! जबकि सरकार समझती है कि सिग्रेट पीना निश्चय ही हानिकारक है तो फिर अपने ही कानून को तुड़वाना, कारखानेदारों को समाचार-पत्रों में बड़े-बड़े इश्तिहार देने की तथा सार्वजनिक स्थानों पर बड़े-बड़े बोर्ड लगाने की, सिनेमाघरों में स्लाइड दिखाने की छूट देना, हर दफ्तर इत्यादि में हर मेज पर सिग्रेट के लिए राखदान (Ash-tray) रखाना आदि क्या मजाक है! चौराहों पर सिग्रेट वालों की ओर से लगे बोर्डों पर इतने बड़े सिग्रेट बने होते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क पर जो मनावैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है वह अपनी छाप छोड़ जाता है। परन्तु सरकार जो जनता की माता-पिता के समान है, जनता रूप अपनी सन्तति को इस बुरी आदत से छुड़वाने के लिये कोई प्रभावशाली कदम नहीं उठाती।

उसका एक कारण यह भी है कि सिग्रेट, शराब आदि से प्रादेशिक सरकारों, नगर पालिकाओं इत्यादि को बहुत आमदनी होती है। हाय, वे जनता के स्वास्थ्य की ओर पूरा ध्यान न देकर ऐसे विषैले व्यसनों से होने वाली आमदनी को महत्त्व देते हैं! गोया वह लोगों को विष लेने की

स्वीकृति देते हैं!

सिग्रेट से आर्थिक हानियाँ

आज देश में करोड़ों रुपया सिग्रेट बनाने, बेचने, पीने आदि पर खर्च होता है। यह कैसे दुर्भाग्य की बात है कि देश का करोड़ों रुपया ऐसी चीज पर खर्च होता है जो न तो भोजन का हिस्सा है, न उससे दूसरों ही कोई लाभ है। यह तो गोया पैसा खर्च कर बीमारी मोल लेने का साधन है। एक ओर करोड़ों लोग भूखे मरते हैं, दूसरी और अमीर तथा गरीब लोग करोड़ों रुपया सिग्रेट में ही फूँक देते हैं। क्या यह देश के धन को व्यर्थ गँवाना तथा मनुष्य के स्वभाव को बिगाड़ना नहीं है? कितने ही गरीब अपनी आय का कुछ भाग प्रतिदिन इस पर खर्च कर डालते हैं जबकि उनके घर का जरूरी खर्च भी पूरा नहीं हो पाता।

कितनी बार हम समाचार-पत्रों में पढ़ते हैं कि अमुक स्थान पर आग लग गई और उसका कारण यह था कि सिग्रेट का सुलगता हुआ कुछ हिस्सा रह गया था। इसी तरह की और कितनी हानियाँ होती हैं! परन्तु ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग (Meditation) के सिवा अशान्ति से तथा बुरी आदतों से छूटने का दूसरा और कोई तरीका हमारे विचार में नहीं है! सहज राजयोग के अभ्यास से ही मनोबल बढ़ता है और संस्कार परिवर्तन होता है।

माँसाहार – नैतिक पक्ष

किसी ने कहा है कि ''आप मुझे बताइये कि फलाँ मनुष्य क्या-क्या खाता है और मैं आपको बताऊँगा कि उसका चरित्र कैसा है!'' वास्तव में यह काफी हद तक ठीक कहा गया है क्योंकि मनुष्य के भोजन का उसके चरित्र से गहरा सम्बन्ध है। परन्तु आज कुछ लोग इस बात को न समझते हुए भोजन को केवल एक रसायन-वैज्ञानिक (Chemist) की दृष्टि से ही देखते हैं। आज डॉक्टर लोग जब किसी को भोजन के बारे में राय देते हैं तो वे इसी बात पर ध्यान देते हैं कि मनुष्य की आयु अथवा इसके व्यवसाय अथवा इसके कद-बुत के हिसाब से उसके लिए कितनी कैलोरीज (Calories) ज़रूरी हैं। दूसरे शब्दों में वे देखते हैं कि इसके कार्य के लिए उसमें कितनी शक्ति की आवश्यकता है। इस हिसाब से वे उसे ऐसे-ऐसे पदार्थ खाने के लिए कहते हैं कि जिनसे उतनी ही शक्ति (Energy) पैदा हो। या तो वे यह देखते हैं कि उसके भोजन में कौन-से विटामिन, कैल्शियम, गन्धक, शर्करा (Carbohydrates) या प्रोटीन की आवश्यकता है और उसके अनुसार वे उसे कहते हैं– अमुक-अमुक वस्तु खाना और, यदि किसी में पहले से ही किसी तत्व का आधिक्य हो, जैसे मान लो किसी में मोटापा हो या किसी को मधुमेह (Diabetes; शूगर) का रोग हो तो उसे वे ऐसी चीजें खाने के लिए मना करते हैं जिनमें चिकनाहट (Fat) या शर्करा आदि अधिक हों।

भोजन के बारे में यह दृष्टिकोण एकांगी है

निस्सन्देह, भोजन की आवश्यकता शरीर को शक्ति अथवा पुष्टि देने,

उसमें गर्मी बनाए रखने, उसमें प्रतिदिन होने वाली टूट-फूट को ठीक करने, शरीर के विकास (Growth) के लिए सभी तत्व पहुँचाने तथा शरीर में से व्यर्थ मादे, मल तथा बचे-खुचे हानिकारक तत्वों (Toxins) को निकालने के लिए भी होती है और, यदि कोई रसायन-विज्ञान-विशेषज्ञ अथवा कोई डॉक्टर इस विद्या के आधार पर परामर्श देता है तो वह मान्य और लाभकर है। **परन्तु मनुष्य कोई पशु नहीं है कि केवल उसके शारीरिक पक्ष पर ही ध्यान दिया जाये। मनुष्य के जीवन का नैतिक एवं आध्यात्मिक पहलू भी बहुत महत्त्वपूर्ण पहलू है। और उन पर भी अगर अधिक नहीं तो उतना ध्यान देना तो ज़रूरी है जितना कि कायिक पक्ष पर।** अत: जैसे भोजन विशेषज्ञ (Dietician) सन्तुलित भोजन (Balanced Diet) के बारे में मार्ग-दर्शन देने का अधिकारी (Authority) है, वैसे ही अध्यात्म-निष्ठ व्यक्ति भोजन के नैतिक एवं आध्यात्मिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए भोाजन के बारे में विधि-निषेध बताने का अधिकारी है।

क्या भक्ष्य-अभक्ष्य का विषय केवल निजी मामला है?

परन्तु भोजन के नैतिक पक्ष के महत्त्व को न समझते हुए कुछ लोग कहते हैं कि भोजन तो मनुष्य का निजी मामला है। जिसको जो प्रिय लगे, वह उसे खाये। इसमें किसी की दखल-अन्दाजी की क्या ज़रूरत है? हम अपने घर में बैठ कर जो कुछ खाते हैं या किसी दोस्त के साथ होटल में जिस-जिस पदार्थ के लिए फरमाइश करते हैं, वह हमारी व्यक्तिगत रुचि और हमारी पसन्द की बात है। उसमें कोई पाबन्दी की बात भला क्यों होनी चाहिए?

निस्सन्देह कोई व्यक्ति किसी चीज़ को किसी भी मात्रा में खाना चाहे– यह उसकी अपनी इच्छा और आवश्यकता पर निर्भर है। परन्तु जैसे शरीर को ठीक रखने के लिए वह शरीर विज्ञान-वेत्ताओं से परामर्श लेता है उसी प्रकार नैतिकता और आध्यात्मिकता की पुष्टि के लिए उसे उनकी बात को भी शिरोधार्य मानना चाहिए जो उसके हितों के लिए, अपने ज्ञान तथा अनुभव के आधार पर, उसे परामर्श देते हैं। दूसरी बात यह है कि जब तक कोई व्यक्ति ऐसी चीज खाता है जिसके खाने से दूसरों को कुछ कष्ट, क्लेश या हानि नहीं होती, तब तक तो वह अपनी इच्छा का स्वामी है परन्तु **यदि मनुष्य कोई ऐसी चीज खाता है जिसके खाने से संसार में अनाचार, दुर्भाव, हिंसा, स्वार्थ-भावना, वैर-वैमनस्य आदि बढ़ता है तब तो उसके भोजन पर अंकुश होना आवश्यक हैं।** यों तो जब कोई व्यक्ति कार चलाता है तो कह सकता है कि मैं अपनी मोटर कार (Car) का स्वामी हूँ, मैं जिधर भी जाऊँ और कार (Car) को जहाँ खड़ा करूँ, उसके लिए मुझ पर किसी की रोक -टोक क्यों? सभी जानते हैं कि उसकी बात कुछ ठीक भी है और कुछ ठीक नहीं भी है। हाँ, वह जिधर जाना चाहे, इसके लिए उसे स्वतन्त्रता है, परन्तु उसे जाना अपने बायें हाथ पर (किसी-किसी देश में दायें हाथ पर) ही होगा। अगर किसी ओर से कोई जलूस जा रहा होगा तो उस ओर उसे कार ले जाने की रोक-टोक भी होगी क्योंकि वहाँ उसका दूसरों से भी सम्बन्ध है और उधर कार ले जाने से दूसरों को हानि होने की सम्भावना है। इसी प्रकार वह जहाँ चाहे कार को रोक सकता है परन्तु वह सड़क के बीच में कार को नहीं रोक सकता, केवल पार्किंग

स्पेश (Parking space) में ही रोक सकता है ताकि दूसरों को रुकावट न हो और हानि न पहुँचे। बड़ी बात तो यह है कि यदि वह कार (Car) को ऐसी रीति चलाता है जिससे दूसरों की जान चली जाये तो उससे उसका लाइसेंस (Licence) छीन लिया जाता है अथवा उसे दण्डित किया जाता है। अत:मनुष्य को खाने का अधिकार तो है परन्तु अपने खाने के लिए किसी को दु:ख पहुंचाने का अधिकार नहीं है।

माँस खाने में क्या हर्ज है?

कुछ लोग कहते हैं कि माँस खाने में भला हर्ज क्या है? इसके लिए मना करने का कारण क्या? इससे दूसरें को क्या हानि होती है? वास्तव में बात बहुत स्पष्ट है। इन्सान एक ऐसा प्राणी है जिससे सहानुभूति, दयाभाव, प्रेम, उदारता और करुणा की आशा की जाती है। जंगलो दरिन्दों में और एक नगरवासी या ग्रामवासी मनुष्य में धरती और आकाश का अन्तर है। इन्सान की इन्सानियत इसी में है कि उसमें परोपकार की भावना, पर-पीड़ा को हरने की कामना, दूसरों के प्रति शुभ-चिन्ता सदा बनी रहे। यदि उसमें से ये भावनाएं निकल जाएं तो वह इन्सान के दर्जे से गिर जाता है, वह मनुष्य के वेष में भेड़िया बन जाता है। तब इन्सानियत की बजाए दरिन्दगी उसके मन में डेरे डाल देती है। तब जंगल और नगर में कोई अन्तर नहीं रह जाता? तब पशुत्व और मनुष्यत्व के बीच की रेखा मिट जाती है। अब यदि माँस खाने की आदत या भोजन-प्रणाली पर विचार किया जाये तो बात स्पष्ट है कि माँस-भक्षी मनुष्य अपना पेट भरने के लिए दूसरों की हत्या कर डालता है। वह अपने चन्द मिनटों के स्वाद के लिए दूसरों

से इस दुनिया की धूप और छाँव में चार दिन जीवन जीने का अधिकार छीन लेता है। जो मनुष्य ऐसा कर सकता है, उसके आगे नैतिक विधि-विधान, आचार संहिताएं या चरित्र कुछ भी महत्त्व नहीं रखते। तब तो वह अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए कुछ भी कर सकता है। जब वह अपनी एक बार की भूख मिटाने के लिए दूसरे की गर्दन पर अथवा उसके पेट पर छुरा मरवा सकता है तो फिर उस व्यक्ति से हम जीवन के लेन-देन में, व्यवहार और व्यापार में किस आचार-संहिता की आशा कर सकते हैं? क्या वह नहीं देखता कि जब किसी बकरे को या मुर्गे को किसी कसाई के पास ले जाने लगते हैं तो वह पहले ही भांप जाता है कि आज ये हमें मरवाने जा रहा है? तब वे कितने वेग से भाग जाने की कोशिश करते हैं कि जिससे उनका जीवन बच जाए! कितना रोते हैं, कितने वेदनापूर्ण स्वर में प्रार्थना करते हैं! वे कैसे मुँह उठा कर हमसे दया के लिए याचना करते हैं !. इस सब हृदय-विदारक दृश्य को देख कर भी जिसके मन में न प्रेम, न दया, न उदारता, न करुणा, न सहायता और न न्याय का भाव उत्पन्न होता है, उस मनुष्य की मनुष्यता की भला क्या कहें! इसी निर्दयता का परिणाम है कि आज संसार में हरेक व्यक्ति अपना उल्लू सीधा करने में लगा है, दूसरे की जेब काट कर भी अपनी ही जेब भरने में व्यस्त है। वह आचार की सभी मर्यादाएँ तोड़ कर भी अपना स्वार्थ साधने में लग जाता है। इससे ही संसार में अनाचार, दुराचार और हिंसा पनपती है और मंगल में जंगल हो जाता है।

पेड़ पौधों में मस्तिष्क तथा स्नायुमण्डल नहीं होता

कुछ लोग आज यह तर्क करते हुए सुने जाते हैं कि जान तो पेड़-पौधो में भी होती है। अत: जब हम फल खाते हैं तो अपनी उदर-पूर्ति के लिए दु:ख तो हम उनको भी देते ही हैं। वास्तव में यह तर्क भ्रान्तियों पर आधारित है क्योंकि एक तो पेड़-पौधों में वैसा स्नायुतंत्र (Nervous system) और मस्तिष्क (Brain) नहीं होता जैसे कि पशु-पक्षियों में होता है। इसके अतिरिक्त फल, अनाज सब्जियाँ इत्यादि जो हम लेते हैं, वे अपनी पूर्ण आयु को प्राप्त हो चुके हैं और यदि उस अवस्था में उन्हें न लिया जए तो उनके बाद गलने, सड़ने और नष्ट होने की स्थिति वैसे भी आ जाती है। फिर विशेष बात यह है कि पेड़-पौधों में भी प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) तथा अन्य वे रासायनिक तत्व (Chemical Ingredients) तो होते हैं जो कि पशुओं में होते हैं परन्तु पेड़-पौधों में आत्मा का वास नहीं होता जैसे कि पशुओं और जीव-जन्तुओं में होता है। अत: पेड़-पौधे पशुओं की तरह बढ़ते तो हैं परन्तु उनको भय, दु:ख, अशान्ति नहीं होती क्योंकि न उनमें मस्तिष्क है, न बुद्धि, न मन, न आत्मा। अत: उन्हें भोजन के रूप में लेने से दु:ख पहुँचाने की बात ही नहीं उठती क्योंकि दु:ख-सुख की अनुभूति का प्रश्न आत्मा अथवा मन और बुद्धि से जुटा हुआ है।

पेड़-पौधों में अनुभवशील आत्मा का वास नहीं है

प्रश्न उठाया जा सकता है कि वनस्पति क्षेत्र में वैज्ञानिकों द्वारा किए गए तजुर्बों के आधार पर यह सर्व ज्ञात है कि मनुष्य के अच्छे या बुरे

चिन्तन का प्रभाव पेड़-पौधों पर भी पड़ता है; तब यह कैसे न माना जाये कि उनमें भी आत्मा है और वे अनुभवशील हैं? इस विषय में निवेदन यह है कि मनुष्य के विचारों के प्रकम्पनों का प्रभाव तो पेड़-पौधो पर पड़ता है जैसे कि शरीर पर, लेकिन उसका यह अर्थ नहीं है कि पेड़-पौधों में भी चेतनता है अथवा उनमें चेतन आत्मा का निवास है बल्कि इसकी सही व्याख्या तो दूसरी ही है। इसको हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं–

जैसे विद्युत के प्रकम्पन तांबे, टंग्स्टन अथवा सोने को प्रभावित कर सकते हैं, वैसे वे लकड़ी, रब्बर या प्लास्टिक को नहीं कर सकते क्योंकि प्रथमोक्त धातुएँ तो बिजली के लिए योग्य माध्यम (Good Conductors of electricity) हैं जबकि उपरोक्त लकड़ी, प्लास्टिक आदि बिजली के लिए अनुकूल माध्यम (Conductors) नहीं हैं। उसी प्रकार पेड़-पौधों का प्रोटोप्लाज्म मनुष्य के विचारों के प्रकम्पनों से प्रभावित होने वाला माध्यम है। उन प्रभावों को देख कर उनमें आत्मा मानना भूल है। पुनश्च, पेड़-पौधों में जीव-जन्तुओं का वास तो हो सकता है और होता है जैसे कि मानव शरीर में भी असख्य जीवाणुओं का वास होता है, परन्तु हर पौधे और हर पेड़ में किसी स्वामिनी आत्मा का वास नहीं होता जैसे कि किसी शरीर में, शरीर के भोक्ता– किसी आत्मा का वास होता है। अत: पेड़-पौधों से फल अथवा उन द्वारा होने वाली उपज के द्वारा मनुष्य अपने भोजन की सामग्री जुटा कर उनके दु:ख का निमित्त कारण नहीं बनता।

प्रश्न केवल 'शाकाहार' तथा 'माँसाहार' का नहीं, 'इंसानियत' और 'अमानुषिकता' का है

बात केवल इतनी ही नहीं है, वनस्पतियों में से भी कई चीजें ऐसी हैं जो आध्यात्मिक एवं नैतिक उन्नति चाहने वाले मनुष्य के लिए श्रेयस्कर नहीं हैं। प्याज, लहसुन इत्यादि उनमें शामिल हैं। अत: चर्चा केवल शाकाहार (Vegetarian food) और माँसाहार (Non-Vegetarian food) तक ही सीमित नहीं बल्कि आध्यात्मिक उन्नति चाहने वाले व्यक्ति के लिए शाकों, फलों, सब्जियों इत्यादि में से भी वे चीज़ें वर्जित हैं जो उसके मन को सन्तुलित रखने में बाधक हैं अर्थात् मनुष्य में वासना को भड़काने वाली और उत्तेजना पैदा करने वाली हैं। माँसाहार का एक प्रभाव मनुष्य के मस्तिष्क पर यह भी पड़ता है कि उसमें सहनशीलता अथवा स्थिरता का ह्रास होता है। तजुर्बे करके देखा गया है कि जिन मनुष्यों ने माँस खाना छोड़ा, उनमें बर्दाश्त करने की शक्ति में वृद्धि हुई। अत: नैतिक एवं आध्यात्मिक पक्ष के आधार पर मांसाहार वर्जित है।

माँसाहार और भ्रान्तियाँ

हम आम लोगों को यह कहते हुए सुनते हैं कि मांस खाने से मनुष्य में शक्ति का संवर्धन होता है। यह एक बड़ी भ्रांति है जिसके आधार पर माँस-आहार का सारा पक्ष टिका हुआ है। यदि हम ध्यान से देखें तो हाथी-घोड़ों, बैल, ऊँट आदि जितने भी बलवान, भार लादने वाले या परिश्रम करने वाले पशु हैं, उनमें से कोई भी मांसाहारी नहीं है। उनमें अधिक समय तक सख्त काम करने की क्षमता है। यदि आप एक शेर को हल में किसी तरह जोत दें तो वह शीघ्र ही थक जाएगा जबकि एक बैल दिन-भर लगा रहेगा। इंग्लैंड में शिकारी कुत्तों (जो कि स्वभाव से ही माँसाहारी है) को कुछ समय अनाज ही के भोजन पर रखा गया, तो देखा गया कि उनकी भी बर्दाश्त और क्षमता (Endurance) में वृद्धि हो गई। अन्वेक्षकों ने अनेक देशों का सर्वेक्षण (Survey) करके देखा है कि वहाँ-वहाँ के जो परिश्रम करने वाले अथवा मेहनत-मजदूरी करने वाले वर्ग मांस नहीं खाते,[1] चाहे इसका कारण धन की कमी हो या परम्परा हो, उनकी कार्यक्षमता को देख कर हर कोई मानेगा कि माँस न खाने में ही कायिक भला भी है। इस विषय

---

1. ब्राजील में श्रमिक चावल, फल और रोटी ही खाते हैं। वे बहुत वजन उठाते हैं और बहुत कम ही बीमार होते हैं। मिस्र देश के किसान बहुत ही हृष्-पुष्ट हैं और वे प्राय: शाकाहारी ही हैं। अरेबिया के लोग दूध और खजूर ही खाकर जीवन-भर मेहनत करते हैं। इसी प्रकार फ्रांस, यूनान, स्पेन, रोम के प्राचीन लोगों के जीवन के बारे में जो खोज की गई है उससे पता चलता है कि वे प्राय: शाकाहारी होते हुए भी बलशाली थे। डॉ0 अन्न किंग्सफोर्ड ने 'The perfect way in diet' नामक पुस्तक में इस विषय पर काफी विस्तृत विवरण दिया है।

में हमें यह भी मालूम होना चाहिए कि प्रोटीन (जिसके कारण ही लोग मांस खाने का पक्ष लेते हैं) शक्ति उत्पादक नहीं है। शक्ति तो शर्करा वाले पदार्थ (Carbohydrates) तथा चिकनाहट (Fats) वाले पदार्थों से उत्पन्न होती है। प्रोटीन से तो शरीर का गठन होता है। इस बात को समझाने के लिए एक मोटरगाड़ी का दृष्टांत देना ठीक होगा। मोटर अच्छे धातु से बनाने पर मजबूत तो हो सकती है परन्तु उसे चलाने के लिए तो पैट्रोल या डीजल ही चाहिये। शरीर के लिए पैट्रोल मुख्यत: शर्करा तथा चिकनाहट वाले पदार्थ हैं जो प्रोटीन या मांसाहार से नहीं मिलते अत: जो लोग इस विज्ञान से अपरिचित हैं, वे इस भ्रांति का शिकार हुए-हुए हैं कि मांस से शक्ति बढ़ती है। पुनश्च, जहाँ तक प्रोटीन की बात है, भोजन-विद्या-विशेषज्ञों (Chemists) ने यह भी देखा है कि अन्न, बीज, फल, शाक इत्यादि में ऐसे बहुत-से पदार्थ हैं जिनका सेवन करने के बाद मांस-भक्षण

१. मनुष्य के शरीर में जो प्रोटीन होती है, उसमें कार्बन ५३.२५, आक्सीजन २२.१५, हाईड्रोजन ६.६५, नाईट्रोजन १५.८८ और गन्धक (एल्ज्पी) २.२५ के अनुपात से होता है। नीचे हम कुछ अनाजों और मांस में इसका अनुपात दे रहे हैं।

	कार्बन	हाईड्रोजन	नाईट्रोजन	गन्धक	आक्सीजन
मटर	५२.६५	६.९५	१७.२५	०.४२६	२२.७३
फलियाँ	५१.७२	६.९५	१८.०५	०.३८५	२२.९०
सोयाबीन	५२.१२	६.९३	१७.५३	०.७१०	२२.७१
गेहूँ	५२.७२	६.८६	१७.६६	१.०२७	२१.७३
गाय का दूध	५२.९८	७.१८	१५.७७	०१.७३	२३.१३
माँस	५२.१९	७.१८	१६.८०	००.४२	२०.५१

स्पष्ट है कि अन्नों, दालों और माँस के प्रोटीन के तत्त्वों में कोई विशेष अन्तर नहीं है बल्कि अन्नों तथा दालों में नाईट्रोजन अधिक होता है।

की आवश्यकता ही नहीं रहती। उदाहरण के तौर पर सोयाबीन, दालों और मटर में इतना प्रोटीन होता है कि मनुष्य के सन्तुलित भोजन के लिए वह पर्याप्त है।[२]

कुछ लोग कहते हैं मांस से मनुष्य को सीधे ही (Direct) प्रोटीन मिलता है। उनकी यह मान्यता पाचन-क्रिया और सम्बन्धित रसायन विज्ञान (Biochemistry) की अनभिज्ञता पर आधारित है क्योंकि वास्तव में प्रोटीन सीधा मांस में नहीं मिलता बल्कि हम जो भी प्रोटीन लेते हैं, वह एक प्रकार के तेजाबी मादे, जिन्हें अमीनो एसिड्स (Amino acids) कहते हैं, के रूप में परिवर्तित होता है और शरीर के जिस-जिस हिस्से में जिस रूप में जरूरत हो, वहाँ वे प्रयुक्त हो जाते हैं। और, यह बात प्रसिद्ध है कि किसी एक मनुष्य के मांस के जो प्रोटीन होते हैं, वह दूसरे प्राणी के मांस के प्रोटीन से भिन्न ही होते हैं। अतः सीधे ही जाकर इसके शरीर के मांस में वृद्धि का तो प्रश्न की नहीं उठता।

माँसाहार हानिकारक

देखा जाए तो मांस में इतना युरिक एसिड (Uric-acid) होता है, जिसका प्रभाव गुर्दों पर बुरा पड़ता है क्योंकि उन्हें अधिक यूरिया के निष्कासन का काम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, मांसाहार तो वैसे भी हानिकारक है क्योंकि यह मानी हुई बात है कि मनुष्य के भावों का प्रभाव उसके शरीर पर भी पड़ता है और जब किसी पशु को वध के लिए ले

२. स्पष्ट है कि अन्नों, दालों और माँस के प्रोटीन के तत्त्वों में कोई विशेष अन्तर नहीं है बल्कि अन्नों तथा दालों में नाईट्रोजन अधिक होता है।

जाया जा रहा होता है उस समय उसके भय, क्रोध, चिन्ता आदि का प्रभाव ऐसा होता है कि उससे कई विषैले तत्व उसके रक्त और मांस में जा मिलते हैं और इन सबसे यह विषाक्त और अभक्ष्य हो जाता है।[३]

मनुष्य की शरीर संरचना मांसाहार के अनुकूल नहीं

फिर विशेष बात यह है कि मनुष्य के शरीर की रचना ही ऐसी है कि वह मांस-भक्षण के अनुकूल ही नहीं है क्योंकि देखा गया है कि जो मांस खाने वाले जानवर हैं, उनके दाँत नुकीले होते हैं, उनकी अन्तड़ियां छोटी होती हैं और उनके पंजों की बनावट चीर-फाड़ करने के योग्य होती है और उनके जबड़े बकरी या गाय के जबड़ों की तरह दांये-बांये हिलने-जुलने वाले नहीं होते बल्कि कुत्ते के जबड़ों की तरह एक ही स्थान पर सुदृढ़ होते हैं। इसके विपरीत मानव के दांत प्राय: चपटे होते हैं, उसकी अन्तड़ियाँ छोटी नहीं है और उसके हाथों की बनावट भी अलग प्रकार की है। यह भी देखा गया है कि माँस खाने वाले जानवरों के सामने जब कोई तरल पदार्थ रखा जाता है तो वे उसे होठों के द्वारा पीते नहीं बल्कि जबान निकाल कर चाटते हैं। इन सभी से यह प्रमाणित है कि माँस मनुष्य का भोजन नहीं है।

---

३. पशु के शरीर से जो व्यर्थ मादा (Waste Products) बाहर निकलने की क्रिया में होते हैं, वे अभी रक्त में ही होते हैं कि पशु को मार दिया जाता है। अत: वे माँस में ही रह जाते हैं। पुनश्च, यह भी देखा गया है कि पशु के माँस में, उसके मूत्र (Urine) से भी अधिक युरिक एसिड होता है। फिर विशेष बात यह है कि मारे जाने से पहले पशु में जो वरन् और आवेश पैदा होता है, उससे भी उसके माँस में विषैले तत्व आ मिलते हैं।

शाक और दाना खाने वाले पशुओं का वध करने की बजाए शाकाहार ही क्यों नहीं?

ध्यान देने के योग्य एक बात और भी है। मनुष्य प्राय: उन्हीं पशुओं ही का तो मांस खाता है जो स्वयं माँसाहारी नहीं हैं। उदाहरण के तौर पर बकरी, मुर्गा आदि माँसाहारी नहीं हैं। अत: जबकि वे दाना या शाक आदि खाकर प्रोटीन तथा अपना माँस बना लेते हैं तब क्या मनुष्य स्वयं ही अन्न या शाक आदि खाकर अपने लिए प्रोटीन नहीं ले सकता? जो मनुष्य मांस खाता है, वह अपने शरीर के उन भागों का प्रयोग नहीं करता जो प्रोटीन बनाने का कार्य करते हैं। अत: वास्तव में यह उसके शरीर के लिए हानिकारक है क्योंकि जिस भाग का प्रयोग न किया जाए वह धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है।

संसार में अन्न की कमी का बहाना भी धोखा है

कुछ लोग कहते हैं कि संसार में इतना अन्न और इतना शाक उत्पन्न नहीं होता कि सभी मनुष्य उससे पेट भर सकें। अत: वे कहते हैं कि मांसाहार इसलिए भी आवश्यक है ताकि सभी को खाना मिल सके। वास्तव में मांसाहार का पक्ष लेने वालो की यह भी एक भ्रांति ही है। क्या पृथ्वी हमें इतने फल, शाक और अन्न नहीं देती कि हम उससे पेट भर सकें? यह तो कुदरत पर मिथ्या दोष है। यदि हम संसार के विभिन्न देशों की ओर ध्यान दें तो हम देखेंगे कि माँस और अण्डा खाने वाले देशों में न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, केनेडा, अमेरिका, इंग्लैंड और डेनमार्क ही मुख्य हैं और उनके साथ आप फ्रांस और जर्मनी को भी ले सकते हैं। परन्तु यदि इन देशों

के अन्नोत्पादन के आँकड़ों पर आप ध्यान दें तो आप देखेंगे कि वहां इतना तो अन्नादि होता है कि हरेक व्यक्ति को लगभग एक पाउण्ड गेहूँ मिल सकता है। पुनश्च, अन्य देश, जहाँ जनसंख्या बहुत है परन्तु अन्न का उत्पादन उतना नहीं है, वहां भी यदि खेती के आधुनिक साधनों का प्रयोग किया जाए तो अन्न की कमी न होगी। उदाहरण के तौर पर भारतवर्ष में जब से खाद के कारखाने बने हैं और खेती के लिए ट्यूबवैल लगाये हैं, ट्रैक्टर प्रयोग होने लगे हैं और अच्छे बीज प्राप्त होने लगें हैं, तब से अन्न के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है। फिर समस्या का हल इसमें नहीं कि अधिकाधिक मांसाहारी बना जाए बल्कि हल यह है कि जनसंख्या की वृद्धि पर नियन्त्रण किया जाये क्योंकि जनसंख्या की वृद्धि से केवल अन्न की नहीं बल्कि रोजगार, निवास-स्थानादि की भी समस्याएं बढ़ती हैं। यदि अन्न हो भी सही तो लोगों का आर्थिक स्तर ऐसा है कि वे अन्न खरीद नहीं सकते। इसके लिए भी जनसंख्या की वृद्धि की दर को कम करना जरूरी है। अत: निष्कर्ष यह हुआ कि अन्न की कमी का तर्क गलत है क्योंकि अन्न तो पर्याप्त मात्रा में है और इससे अधिक भी पैदा किया जा सकता है। फिर हमें यह भी देखना चाहिए कि माँसाहार वालों के लिए जो मुर्गीखाने (Poultry) बनाये जाते हैं, उससे तो अधिक ही अन्न खर्च होता है क्योंकि विज्ञ लोगों ने हिसाब लगाया है कि मुर्गे से मनुष्य को जितना प्रोटीन मिलता है, उससे कई गुणा अधिक तो मुर्गा अन्न खा जाता है।

जहाँ अन्न उत्पन्न ही नहीं होता, वहाँ क्या करें?

ऐसे भी लोग हैं जो कहते हैं कि संसार में कई स्थानों पर अन्न उत्पन्न

ही नहीं होता, वहाँ तो बर्फ ही बर्फ होती है या चारों ओर रेगिस्तान होता है; अत: वहाँ तो मनुष्य को मांसाहार करना ही पड़ता है। वे टुंड्रा और सहारा का उदाहरण देते हैं। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य की तो शरीर रचना ही ऐसी है कि वह ऐसे वायुमण्डल में रहने वाले के अनुकूल है ही नहीं। उदाहरण के तौर पर हम देखते हैं कि टुंड्रा में रहने वाले रेण्डियर की खाल और उसके बाल वहाँ के वायुमण्डल के अनुकूल ही हैं जबकि मनुष्य के ऐसे नहीं हैं। अत: वास्तव में मनुष्य को ऐसे इलाकों में रहने की आवश्यकता ही नहीं। तो भी यदि वहाँ थोड़े से लोग रहते हैं तो क्या हमें इन लोगों का अनुकरण करना है जो श्रेष्ठ सभ्यता और दिव्य संस्कृति से नितान्त दूर हैं? अत: यह तर्क भी निराधार ही है।

माँसाहार न करने से पशु पढ़ जायेंगे – यह कैसा तर्क!

आपको ऐसे भी व्यक्ति मिलेंगे जो यह कहेंगे कि – "यदि हम माँसाहार न करें तो संसार में पशुओं आदि की संख्या इतनी बढ़ जायेगी कि सारा संसार ही एक दिन उनसे भर जाएगा और हमें न रहने को जगह मिलेगी, न खाने को अन्न । वास्तव में ऐसा सोचना भी मनुष्य की भूल है। कुदरत की ओर से संसार में व्यवस्था बनी ही हुई है। मनुष्य के हस्तक्षेप से तो वातावरण में सन्तुलन (Eco-balance) ही बिगड़ गया है। संसार में सभी प्रकार के पशुओं, पक्षियों का कुछ-न-कुछ महत्त्व है और एक के जीवन का दूसरे के जीवन के साथ किसी-न-किसी प्रकार सम्बन्ध है। मनुष्य को इस सारे वायुमण्डल में सभी जीव-प्राणियों के महत्त्व का पता ही नहीं है, अभी केवल कुछ ही की उपयोगिता का ज्ञान उसे होने लगा है। आज

यह सर्व विदित है कि किस प्रकार मनुष्य ने अपनी न समझी से वातावरण के सन्तुलन को बिगाड़ दिया है।

माँसाहार अत्याचार है

कहीं-कहीं यह तर्क सुना जाता है कि पशु हम पर आक्रमण करें तो हम क्या करें? तब तो हमें उनका हनन करना ही पड़ता है। वास्तव में यह प्रश्न ही अलग है। सरकार की ओर से जो कानून बना हुआ है, उसके अनुसार भी यदि किसी द्वारा आक्रमण होने पर आत्मरक्षा (Self-defence) करने के लिए यदि कोई आक्रमणकारी को चोट पहुँचाता है तो वह अपराधी नहीं माना जाता। फाँसी या आयु-भर कैद का दण्ड तो उन्हीं को मिलता है जो स्वयं दूसरे पर आक्रमण करते, उसमें सहयोग देते या उस योजना में भाग लेते हैं। इसलिए कहा गया है कि मांस बनाने, बेचने, पकाने और खाने वाले– सभी दोषी हैं। अब देखा जाय तो मुर्गा, बकरा या ऐसे दूसरे पशु जिनका मनुष्य माँस खाता है, वे मनुष्य की हत्या करने वाले या उस पर आक्रमण करने वाले पशु नहीं हैं। वे हमें कोई हानि नहीं पहुँचाते हैं, अत: उन्हें मारने के लिए तो कोई भी सही आधार नहीं है। वास्तव में तो मनुष्य को "जियो और जीने दो" (Live and let live) की नीति का पालन करना चाहिए, वरना दूसरे पशुओं एवं प्राणियां से उसकी श्रेष्ठता ही क्या रही?

बाकी तर्क - वितर्क को छोड़ भी दिया जाए तो विशेष बात यह है कि जिस मनुष्य को पशुत्व के दर्जे से ऊँचा उठने की इच्छा है, जो अपना नैतिक और आध्यात्मिक विकास करना चाहता है, जो कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण प्राप्त कर योगी बनना चाहता है, उसे तो हिंसा और स्वार्थ को छोड़

कर प्राणियों पर दया का मार्ग अपनाना ही चाहिए और मांसाहार का अवश्य त्याग करना ही चाहिए।

जो लोग डार्विन के विकासवाद के अनुयायी हैं, वे कहते हैं कि आदि-मनुष्य तो शिकारी और मांसाहारी ही था। अत: यदि अब भी मानव मांस खाता है तो क्या आपत्ति है? उनकी यह मान्यता भी वास्तव में गलत है। विकासवाद के बारे में तो अनेकानेक ऐसे अकाट्य प्रमाण किये जा सकते हैं जिनसे सिद्ध हो जाता है कि विकासवाद कोई सिद्ध कोटि का वाद नहीं है। इस विषय में 'विश्व का भविष्य' नामक पुस्तक का 20 वां अध्याय देखिए। और तो क्या स्वयं इस वाद के कर्त्ता चार्ल्स डार्विन के अपने मित्रों को लिखे हुए जो निजी पत्र मिले हैं उनसे ही स्पष्ट है कि वह स्वयं भी मानते थे कि उनका मत प्रमाणित नहीं है। अच्छा, यदि उनके मत के अनुसार मानव का पूर्वज वानर था, तब वानर तो मांसाहारी नहीं है। अत: जबकि मानव के पूर्वज मांसाहारी नहीं थे और आज भी (वानर) मांसाहारी नहीं, तब तो उसे भी मांस-भक्षी नहीं होना चाहिए। फिर, वानर जाति के बाद जो 'आदि मानव' हुआ, वह तो वनविहारी, असभ्य, अशिक्षित एवं असंस्कृत था। आज तो मनुष्य सभ्य, सुसंस्कृत और सुशिक्षित एवं विकसित होने का दावा करता है, तब इस विषय में जंगली जानवरों का अनुकरण करना तो निरर्थक ही है। इस पर भी यदि मनुष्य समय देकर इस तथ्य की विस्तृत व्याख्या समझे तो उसके समक्ष स्पष्ट किया जा सकता है कि मानव के पूर्वज तो देवी-देवता थे। आज भी इन देवी-देवताओं के स्मरण-चिह्न (उनकी प्रतिमाएं) मन्दिरों में पूजी जाती हैं तथा उनके यशोगान

में उनके दिव्य गुणों का वर्णन किया जाता है। श्री कृष्ण आदि देवताओं के भोग का जब वर्णन किया जाता है, उसमें ३६ प्रकार के फल, मेवे और पदार्थों का वर्णन होता हैं परन्तु मांस का तो कहीं भी उल्लेख नहीं होता। आज द्वारका में, नाथ द्वारे में, जगन्नाथ पुरी आदि के मन्दिरों में जो भोग लगाया जाता है, वहाँ इस मलेच्छ आहार का तो नाम लेना ही पाप है।

हाँ, आपको कुछ ऐसे भी व्यक्ति मिलेंगे जो यह कहेंगे कि श्रीराम ने तो 0 नवास के दिनों में माँस भक्षण किया था। हाय, हाय! उन्हें यह कहते हुए जरा भी लज्जा या संकोच का अनुभव नहीं होता! श्रीराम के भक्त महात्मा गाँधी – माँस के कट्टर विरोधी और शुद्ध शाकाहारी थे और जो राम का अनुकरण ज़रा भी नहीं करते, वे कहते हैं कि राम शिकार करते थे और माँस....! वे रामायण के पन्नों को खोल कर दिखाने के लिए तैयार हो जाते हैं। एक ओर वे राम को ''मर्यादा पुरुषोत्तम' मानते हैं और 'भगवान या देवता' की संज्ञा देते हैं और'राम-राम' जपने की बात कहते हैं और दूसरी ओर राम के बारे में अनाप-शनाप कहते हैं! यह तो 'मुंह में राम-राम और बगल में छुरी' वाली बात आ गई । यदि वे ऐसे राम के ही अनुयायी बनते हैं तो लटकायें कन्धे पर तीर-कमान! आज इतनी सीताओं का अपहरण होता है, उनको छुड़ाने के लिए करें वे युद्ध। वे अपने पिता के लिए करें चौदह वर्ष वनवास। आज तो लोग अपने पिता और खेती को छोड़ कर चालीस वर्ष नगर-वास को चल पड़ते हैं!

वास्तव में राम-रावण की आध्यात्मिक कहानी क्या है? उस लाक्षणिक कथा का उच्च भाव क्या है, क्या दस सिरों वाला रावण था भी या नहीं?

यह सभी रहस्य ठीक तरह समझने की जरूरत है। उसको समझने के बाद मांस खाने की बात तो एक ओर रही, मनुष्य माँस को देखना भी अच्छा नहीं समझेगा। आज भी राम-उपवासी, वैष्णव लोग अहिंसा ही को परमधर्म मानते हैं। गुजराती में तथा अन्य भाषाओं में भी जिस दुकान पर वैष्णव भोजनालय या ब्रह्मा भोजनालय लिखा होता है लोग उससे यही समझते है, कि यहां शाकाहारी भोजन ही मिलता होगा। अत: राम के बारे में मिथ्या बाते सोचना, अशुद्धाहार के लिए ग़लत बहाना ढूँढ़ना है और मिलावटी व्यापारियों की तरह पहले के किताबी मिलावटी लेखकों का अन्धानुकरण करना है।

अच्छा, पहले कोई खाता भी रहा हो तो क्या इसी को आधार मान कर आज, जब हम उसकी बुराई और अनैतिकता को समझ चुके हैं, खाते चले जाना चाहिए? यदि अन्य कोई व्यक्ति ग़लत काम करता भी है तो उसका उदाहरण देकर हमें भी वह ग़लत काम करना चाहिए? एक जमाना था लोग वनों में शेर का शिकार करते थे परन्तु आज सरकार ने इस पर पाबन्दी लगा रखी है और इसको तोड़ने वाले को दण्डित किया जाता है। तब क्या इस बात को आधार मान कर आज भी शेर का शिकार किया जाये कि पहले लोग शिकार करते थे? एक जमाना ऐसा आया कि लोग एक से अधिक पत्नी कर लिया करते थे परन्तु आज इस पर कानून के द्वारा भी पाबन्दी है। तब क्या आज भी मनुष्य एक-दारा (Monogamy) के नियम को छोड़ कर बहु-विवाह को अपनाये? आज तो यह नियम है कि अनेक नगरों में सरकार से आज्ञा लिए बिना आप अपने पड़ोस में लगे हुए

वृक्ष को भी नहीं काट सकते। आज किसी को यह अधिकार नहीं कि वह मुकद्दमा किये बिना तथा सन्तोषजनक कारण बताये बिना किसी को बन्दी बना सके या मृत्यु दण्ड दे सके? तब भला मनुष्य को यह क्या अधिकार है कि वह पशु-पक्षियों के जीवन के साथ खिलवाड़ खेलता रहे? वह किस धारा या नियम के अनुसार उनकी हत्या करता है? जब वह किसी को जीवन नहीं दे सकता तो उसे छीनने का क्या अधिकार है?

एक ग़लत काम को करने के लिए मनुष्य अनेक प्रकार की उल्टी-सीधी बाते बनाता है। वह कहता है कि ईसाई धर्म के ईसा भी तो इतने बड़े स्थापक होकर मछली खाते थे। उसे यह शायद मालूम नहीं है कि ईसा के मुख्य शिष्य और ईसाई मत के प्रसिद्ध प्रचारक पीटर (Peter), जेम्स, मेथ्यू (Mathew), डेनियल आदि माँसाहारी नहीं थे। यूनानी दार्शनिक अरस्तु (Aristotle), अफलातून (Plato), सुकरात (Socretes), प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन (Newton), अंग्रेजी कवि मिलटन, पोप, शैले लेखक बायरन, नाटककार बर्नार्ड शॉ (Bernard Shaw) आदि भी शाकाहारी ही थे।

बर्नार्ड शा को कुछ डॉक्टरों ने कहा– आप थोड़ा-बहुत मांसाहार जरूर कीजिए वरना, आप मर जायेंगे। इसके उत्तर में बर्नार्ड शा ने कहा– ''चलो आपकी बात का परीक्षण हम करते हैं। अगर मैं बच गया, तब तो मैं आशा करता हूँ कि आप सभी शाकाहारी बन जायेंगे।''[४]

---

4. Well, let us try the experiment. Only if I ''Survive, I shall expect you all to become Vegetarians.''

परन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि बर्नाड शा तो मरे नहीं बल्कि गलत सिद्ध होने पर भी डाक्टर शाकाहारी नहीं बनें । यह तो हठधर्मी ही है। उन डाक्टरों की बात को लेकर ही बर्नार्ड शा ने उस अवसर पर जो शब्द लिखे थे, वे पठनीय हैं। उन्होंने लिखा –

''मेरी स्थिति स्पष्टत: गम्भीर है। मुझे कहा गया है कि अगर मैं गौ या बैल का माँस खाऊँगा तभी जिन्दा रह सकूँगा वरना नहीं। परन्तु मैं मानता हूँ कि माँसाहार से तो मृत्यु अच्छी है। मैने जो अपना वसियतनामा (will) लिखा है उसमें अपने क्रियाक्रम के बारे में निर्देश दिये हैं। मैंने लिखा है कि शव के पीछे मातमी लोगों की गाड़ियाँ न होकर – बैल, भेड़ों, मुर्गियों के झुण्ड तथा एक चलने वाला मछली दल (Acquarium) होगा और इन पशुओं तथा मुर्गों ने श्वेत दोपट्टे या रुमाल लिए होंगे जो इस बात के सूचक होंगे कि यह उस व्यक्ति के सम्मान में हैं जिसने इस संसार के साथी जीवों को खाने की बजाए मर जाना स्वीकार किया। उसमें 'नूह के मेहराब' (Art of Noah) को छोड़ कर बाकी सब-कुछ होगा। ये अपनी प्रकार का एक अद्भुत दृश्य होगा।''[५]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस किसी के भी मन में मानवी गुण

5. My situation is solemn one. Life is offered to me on condition of eating beaf steaks. But death is better than cannibalism. My will contains directions for my funeral, which will be followed not by mourning coaches, but by oxen, sheeps, flocks of poultry and a small travelling acquarium of live fish, all wearing white scarves in honour of the man who perished rather than ate his fellow creatures. It will be, with the exception of Noahe's, the most remarkble thing of the kind seen.

(Human values) हैं, उसने माँस को खाना अनैतिक माना है। अत: आध्यात्मिकता तथा नैतिकता के लिए पुरुषार्थ करने वाले हरेक व्यक्ति को चाहिए कि वह मांसाहार रूपी अनैतिक व्यवहार को इसी क्षण से लेकर दृढ़ संकल्प से सदा के लिए छोड़ दे।

पिछले दिनों समाचार-पत्रों में एक समाचार छपा था जिनमें बताया गया था कि इंग्लैण्ड की रानी मारग्रेट के पति कैप्टिन फिलिप पर वहां की सरकार ने इसलिए मुकद्दमा किया है कि उसने अपने दौड़ के घोड़े (Race horse) को, उससे नाराज होकर, लात मारी जिससे उस घोड़े को कष्ट देने के परिणामस्वरूप, दण्डित किया जायेगा। इसी प्रकार, आप जानते होंगे कि प्राय: सभी देशों में – भारत में भी जानवरों को निर्दयता से बचाने की सरकारी सहायता-प्राप्त संस्थाएं (State Prevention of Cruelty to animals) बनी हुई हैं। यदि कोई मनुष्य अपने तांगे अथवा अपनी बैलगाड़ी पर निर्धारित वजन से अधिक बोझ लेकर जा रहा हो, अथवा अपने घोड़े अथवा बैल को ठीक तरह न खिलाता हो जिससे कि वह दुर्बल हो गया हो या घोड़े को घाव हों और वह उसका इलाज न करता हो अथवा उस संस्था (SPCA) का कोई कर्मचारी किसी कोचवान को अधिक चाबुक मारता देख ले तो वह उसे पकड़ ले जाता है। जब इस सभ्यता की ऐसी स्थिति है तो इस कर्म-प्रधान जगत में पशु-पक्षियों को मार कर उनके खा जाने वालों की क्या गति होगी! आश्चर्य है कि सरकार इसे 'निर्दयता' (Cruelty) के अन्तर्गत लेकर इसके विरुद्ध कानून नहीं बनाती ! परन्तु कुछ भी हो, मनुष्य को अपने किये कर्मों का परिणाम तो भुगतना ही पड़ता है। अत: कर्म गति को समझ माँसाहार को त्यागना चाहिए।

क्या मनुष्य को अपने भोजन के लिए हिंसा का अधिकार है?

एक माँसाहारी अपनी माँस खाने की बुरी आदत को यथार्थ सिद्ध करने के लिए यह तर्क देता है कि प्रकृति में भी तो एक पशु दूसरे का शिकार करता है। जैसे बिल्ली चूहे को खाती है, साँप मेंडक को, मेंडक रेंगने वाले कीड़ों को और वो कीटों को खाते हैं। इस प्रकार मांसाहारी कुछ अन्य तर्क प्रस्तुत करता है और कुछ प्रश्न भी करता है जो कि डार्विन के विकासवादी नियम पर आधारित होते हैं अथवा ''समर्थ ही रह सकता है'' (Survival of the fittest) का सिद्धान्त पेश करता है। हम यहाँ कुछ प्रश्नों पर विचार करेंगे कि ये तर्क, झूठ, भ्रम या असत्य पर आधारित हैं। हम एक शाकाहारी दृष्टिकोण से प्रश्नों का उत्तर देंगे।

प्रश्न – *हम इस विशाल जगत में देखते हैं कि एक जानवर दूसरे का शिकार करके जी रहा है। जब प्रकृति का यह क्रम है तो फिर मनुष्य को जानवरों के भोजन पर जीने से क्यों रोका जाए जबकि वह जानवरों में सर्वोच्च है?*

उत्तर – यह प्रश्न एक ग़लत विचार पर आधारित है। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि सारे पशु शिकारी नहीं है। उदाहरण के लिए गाय, बैल, घोड़ा, ऊँट, हाथी, खच्चर, बंदर और इसी प्रकार से दूसरे बहुत से बड़े व छोटे जानवर दूसरों का शिकार नहीं करते और न ही वे जानवर के माँस पर जीते हैं। मनुष्य की तुलना शिकारी जानवरों से क्यों की जाये? जीव-विज्ञान के आधार पर वह दाँत, अन्तड़ियों, हाथ इत्यादि से ही केवल

शिकारी जानवरों से भिन्न नहीं है बल्कि वह पशुओं से बुद्धिमत्ता, सभ्यता और नैतिकता में श्रेष्ठ है। मनुष्य के श्रेष्ठ होने का यह अर्थ नहीं है जैसा कि ऊपर के प्रश्न में है, बल्कि यह सूचित करता है कि उसका व्यवहार श्रेष्ठ, अधिक सभ्य और दयालु है। इसलिए उसे रक्षक और दयालु होना चाहिए, न कि मारने वाला या कातिल और वह भी जबकि प्रकृति ने उसे अपने स्वाद की सन्तुष्टि और खाने की दूसरी काफी चीजें प्रदान की हुई हैं।

आगे यह भी समझ लेना चाहिए कि माँस खाने वाले जानवरों में कीड़े खाने वाले (Predators of Insects) गिद्ध, कौआ, शेर, चीते और समुद्री जानवर (Marine Animals) —प्रकृति ने मेहतर के रूप में प्रदान किए हैं। मनुष्य गिद्ध की तरह मेहतर (Scavenger) नहीं है। उसका काम मृतक के मांस की सफाई करना नहीं जैसे कि गिद्ध करता है।

इसके अतिरिक्त यह भी बुद्धि में रखना चाहिए कि बहुत से शिकारी पशु शुरू से ही शिकारी नहीं थे, अकस्मात् सामाजिक वातावरण के परिवर्तन ने उन्हें दूसरों का शिकार करने के लिए बाध्य कर दिया। शुरू में (Originally) शेर और चीते मांसाहारी या मनुष्य भक्षक नहीं थे। अब भी पालतू शेर का बच्चा या चीता शिकार नहीं करता। फिर भी जो जानवर दूसरों को जरूरत या मजबूरी के हिसाब से मारते हैं तो वे भी झटके से मारते हैं, ताकि उनको कम-से कम दर्द हो। लेकिन मनुष्य पशुओं को बुचड़खाने में (A place of slaughter) ले जाते हैं और पशु अपनी विचार शक्ति (By Virtue of their Telepathic faculty) या मनुष्य के बर्ताव में

परिवर्तन के कारण यह समझ जाते हैं कि उन्हें मारने के लिए ले जाया जा रहा है। इसलिए वे अपने बचाव के लिए चिल्लाते, पुकारते वे संघर्ष करते हैं। वे यह भी अनुभव करते हैं कि उनका जीवन खतरे में हैं और वह व्यक्ति जिसने कुछ घंटे पहले उसे खिलाया तथा प्यार किया था, अब उसे एक कसाई के हाथ में दे रहा है। जानवरों को पैदल (By land), रेल या समुद्री मार्ग से ले जाने में काफी कष्ट होता है, जानवर यह जानते हैं कि उन्हें मारने के लिए ले जाया जा रहा है। बहुत से पशुओं को उससे आघात पहुँचता है और वे मानसिक पीड़ा का अनुभव करते हैं। परन्तु खेद की बात है कि मनुष्य इतना बर्बर हो गया है कि वह केवल अपनी स्वाद-पूर्ति के लिए उनकी बलि लेता है। यदि उसमें जरा भी मानवता होती तो वह उनकी बलि लेने के बजाए अपने स्वाद का ही बलिदान कर देता।

अगर यह मान भी लिया जाये कि बहुत से जानवर अपने शिकार पर जीते हैं, तो भी मनुष्य को उनकी नकल नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह खेती बाड़ी जैसे श्रेष्ठ कार्यों के द्वारा भी अपना जीवनयापन कर सकता है जो कि मांस खाने से सस्ता एवं सभ्यतापूर्ण है।

प्रश्न – *अगर आपका मन्तव्य यह है कि माँसाहारी को हत्या की आवश्यकता नहीं हैं और हत्या से प्राणियों को कष्ट होता है तब फिर जब मनुष्य चलता है तो बहुत-सी चीटियाँ नहीं मर जाती और जब वह श्वास लेता है तो सूक्ष्म जीवाणुओं को कष्ट नहीं होता? अगर मनुष्य की नियमित दिनचर्या में बहुत-से कीड़े हर रोज मर जाते हैं, क्या कारण है कि उसे जानवरों को अपने भोजन के लिए मारने से रोका जाये?*

उत्तर– प्रश्न है कि क्या मनुष्य जीवधारियों (Living Beings) को जानबूझ कर मारता है? यदि मनुष्य जानबूझ कर अपने पैर के नीचे रेंगने वाले जीवाणुओं के झुंड को कुचल देता है, फिर तो वह एक पाप का कार्य करता है। दूसरी ओर यदि उसकी हिंसा करने की कोई इच्छा नहीं है, परन्तु असावधानी से या अनिवार्य रूप से कुछ कीड़े, चींटियाँ या सूक्ष्म जीवाणु मर जाते हैं तो इसमें उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता। ज़्यादा-से-ज़्यादा उसके बारे में यह कहा जा सकता है कि वह कुछ हद तक अपनी इस लापरवाही के लिए जिम्मेदार है। परन्तु जानवरों को अपने भोजन के लिए मारना तो एक प्रत्यक्ष उल्लंघन है। जो मारता है, उसे कसाई कहा जाता है और जिस स्थान पर इतनी हत्या की जाती है उसे बुचड़खाना या कसाईघर कहा जाता है और ये बातें किसी के लिए भी घृणा योग्य हैं। यदि हम किसी भी सभ्य व्यवसाय के व्यक्ति को कसाई कहें तो वह इसमें अपना अपमान महसूस करेगा और वह जोर से इसका विरोध करेगा। कोई नहीं चाहेगा कि कोई कसाई, जल्लाद या फाँसी देने वाला उसका मित्र हो। जब हम कसाईपन को एक नीच व्यवसाय मानते हैं फिर हम अप्रत्यक्ष रीति से (Indirectly) मदद क्यों दें? चाहे वह कसाईपन या जल्लाद का काम क्यों न हो।

इसके अतिरिक्त यह जानना भी आवश्यक है कि जब कोई न्यायाधीश किसी कत्ल के अपराध का निर्णय करता है तो वह यह भी देखता है कि क्या अपराधी ने अपनी इच्छा से मारा है? अगर अपराधी किसी को मारने में सफल नहीं होता है लेकिन उसकी मारने की इच्छा थी, फिर भी उसे

कत्ल करने का दोष लगाया जाएगा। लेकिन अगर कोई दोषी की इच्छा के बिना मारा जाता है तब यह स्थिति भिन्न हो जाती है। मांस की स्थिति में कसाई के द्वारा हत्या इच्छापूर्वक होती है और जो इसे खाते हैं वह भी इसके प्रोत्साहन देने में अपराधी है। मनुष्य का चरित्र उसके विचार और इच्छापूर्वक कार्यों पर आधरित है । किसी को इस रक्तमय कार्य में हिस्सेदार नहीं होना चाहिए। जिस जानवर को पाला गया हो, फिर उसी के मांस की तरकारी (Dish) का स्वाद लेना एक विश्वासघात की अति है। इसकी तुलना हम सूक्ष्म जीव या कीटों की मृत्यु से नहीं कर सकते जो कि अचानक हमसे टकरा जाते हैं या हमारी बिना इच्छा के मर जाते हैं।

प्रश्न – *वरस्पति विज्ञान या जीव विज्ञान के अनुसार पेड़-पौधों या खाने योग्य अन्न (Cereals) 'सब्जियां', फलों इत्यादि में भी जान है, इसलिए पशु और पौधे एक सतह पर हैं, फिर मनुष्य से शाकाहारी होने के लिए क्यों कहा जाए?*

उत्तर – जीव विज्ञान के अनुसार एक जीव जो बढ़ता है, अपनी पद्धति के अनुरूप निर्जीव पदार्थ को जीव पदार्थ में परिवर्तन करता है एवं जो अपने जैसा जीव पुन: उत्पन्न करता है, एक जीवित प्राणी है। इस दृष्टिकोण से पौधों को भी जीवित पदार्थ कहा जाता है चूँकि उनका भी एक समय होता है जब वह बढ़ते, मुरझाते या मर जाते हैं, लेकिन वह पशुओं से इसमें काफी भिन्न हैं क्योंकि उनमें पशुओं की तरह आत्मा नहीं होती। अगर जीवन, बढ़ने और मुरझाने को कहा जाता है या जितने समय तक यह क्रम रहे, फिर पौधों में भी जीवन कहेंगे। लेकिन यदि जीवन किसी

व्यक्ति की चेतना, व्यवहार, चरित्र तथा व्यक्तित्व को कहा जाए फिर पौधों में जीवन नहीं है क्योंकि पौधों में वह आध्यात्मिक सत्ता नहीं जो कि जीवधारी के मरने के पश्चात् भी रहती है। अत: शाकाहारी या फलाहारी होने में उनका मरना या वध करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसके अलावा मनुष्य भूमि जोतता और उसमें बीज बोता है और तब पेड़ बड़ा हो जाता है तब उसकी हर शाखा फलों से झुक जाती है, जिसका अभिप्राय: है कि इनका जीवन पूरा हो चुका है।

इसके अतिरिक्त पौधों में न तो पशुओं की भांति दिमाग होता है और न ही उनकी तरह पौधों में भावुकता और चेतना होती है। उनमें केवल उत्पत्ति सम्बन्धी या रासायनिक याद (Chemical Memory) और जीवन कोमलता, प्रवाहक शक्ति या संवाहक शक्ति होती है। इसलिए इसमें दर्द उठने का तो प्रश्न ही नहीं उठता हालांकि मनुष्य और पशुओं के नकारात्मक कंपन पौधों की वृद्धि पर बुरा असर डालते हैं। उनमें वनस्पति द्रव्य होता है जिस पर जीवित प्राणियों के मानसिक तरंगों का असर पड़ता है। पशुओं की हिंसा के दर्द की, फलों के पेड़ों से तोड़ने या खेत से फसल काटने से तुलना नहीं की जा सकती।

प्रश्न – *बहुत से पशु बहुत ही तीव्र गति से वृद्धि को पाते हैं, अगर मनुष्य उनमें से कुछ को न खाये तो एक दिन सारा विश्व बकरों, मुर्गियों तथा दूसरे जानवरों से भरा होगा। मनुष्य उनकी बढ़ोतरी को रोकने के लिए मारने के अलावा क्या कर सकता है?*

उत्तर – यह एक व्यर्थ की चिन्ता का दिखावा मात्र है, पशु जाति को

दो भागों में बाँटा जा सकता है– उनमें एक हैं पालतू पशु, पक्षी या घरेलू जानवर और दूसरे वे हैं जो जंगल में आज़ादी से रह रहे हैं जैसे शेर, चीते इत्यादि। विश्व में काफी जंगल हैं जिसमें काफी मात्रा में पशु रह सकते हैं, इसलिए हमें उनमें विघ्न नहीं डालना चाहिए। हमें उन्हें आत्मरक्षा या बच्चों के बचाव के सिवाय नुकसान नहीं पहुंचाना चाहिए। यह स्पष्ट है कि आत्म-रक्षा में किसी का वध करना अपराध नहीं है।

जहां तक पालतू पशुओं का सवाल है, वे अब हमारे समाज का एक अंग बन गए हैं। वे मनुष्य जाति की सेवा करते हैं। गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा इत्यादि मनुष्य के परिवार के एक सदस्य के रूप में हो गये हैं, इसलिए पहले उनकी पीठ पर थप-थपाना, उन्हें पालना और फिर उनका वध करना एक निर्दयता और धोखा है। जो कल तक मनुष्य के बच्चों के साथ खेलते-कूदते थे, उनके आँगन या खेत में रहते थे, वे बूचड़खाने भेजे गये और फिर काटकर, उबालकर, तलकर, पकाकर उन्हें तश्तरियों में परोसा जाता है। यह वास्तव में सभ्यता और संस्कृति के लिए शर्मनाक है जो हमें इस प्रकार के विलासी कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। इतना गंदा व्यवहार तो जानवर भी नहीं करते। इतना विश्वासघाती तो वे भी नहीं होते। यह अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि जब से मानव ने मांस और खून को चखा है, प्रकृति उसके विरुद्ध हो गई है और यह मनुष्य जाति के लिए एक अभिशाप सिद्ध हुआ है। यह मनुष्य की अपनी ही निर्दयता का कारण है जो आज एक मनुष्य की प्रकृति दूसरे मनुष्य के प्रति या एक देश, दूसरे देश के प्रति खून खराबा और बड़ी संख्या में कत्लेआम के लिए तैयार है।

अब प्रश्न यह है कि जानवरों की संख्या कम करने के लिए कसाई के खूनी कार्य से मनुष्य जाति स्वयं ही को क्यों बदनाम करे, उसको यह ज़िम्मेदारी किसने दी है? यह प्रकृति में एक व्यर्थ का दखल है जिसमें अपनी क्षमता रखने की शक्ति है। यह अधिकार मनुष्य जाति को किसने दिया है कि वह दूसरों की अपने भोजन के लिए हत्या करे? यह एक नियम है कि जिसे कोई पैदा नहीं कर सकता, उसे मारने का भी अधिकार नहीं है। मनुष्य का सिद्धांत होना चाहिए ''जियो और जीने दो।'' पहले किसी पशु को पालना, खिलाना और प्यार करना और फिर उसे कसाई को दे देना– एक विश्वासघात, निर्दयता और क्रूरता का कार्य है।

क्या मृत्यु के नज़ारे से हमारी रीढ़ की हड्डी में कंपकंपी नहीं होती? क्या इससे हमारी हमदर्दी को धक्का नहीं लगता ? अगर ऐसा होता है तो फिर मनुष्य मांस का आनंद क्यों लेता है? अगर ऐसा नहीं होता है तो फिर इसका मतलब है कि ऐसे नज़ारों ने मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति (Natural Impulse) को जानवरों के प्रति कठोर बना दिया है। यह एक मानसिक तथ्य है जिससे एक की भावना दूसरे के प्रति मर जाती है। क्या पुरुष या स्त्री अपने बच्चे की हत्या देखना सहन कर सकता है? यह सचमुच भयानक और अविचारणीय बात है। फिर मनुष्य इन छोटे पशुओं या प्राणियों के प्रति इतना निर्दयी क्यों है? जिन्हें कल तक अपना समझकर पाला और प्यार किया गया था और जिन्होंने इसका उत्तर बहुत ही प्यार से दिया, जो दिली प्यार से हमारी आँखों से झाँकते थे, अपने प्यार को दिखाने के लिए अपने कान या पूँछ को हिलाते थे या हमें देखकर खुशी से कूदने लगते थे, आज

हम उन्हें खाएँ— यह एक असभ्य और अमानवीय कार्य है।

प्रश्न – *विकास का सिद्धांत कहता है कि मनुष्य ने अपना जीवन एक शिकारी की तरह शुरू किया। इसलिए क्या उसका पशुओं पर रहना पुरखा अधिकार (Birth-Right) नहीं है?*

उत्तर – यह बिल्कुल गलत धारणा है कि मनुष्य शुरू में शिकारी था। मनुष्य को परमात्मा ने अपने जैसा बनाया और मौलिक रूप से वह दिव्य, दयालु, कृपालु और प्यारा है। जब मनुष्य देह-अभिमान में आ गया और ईर्ष्या, स्पर्धा, घृणा, उत्पात और गुलामी करने लगा और उसकी दूसरी इंद्रियों ने भी उस पर काबू पा लिया, जिसने दूसरों का शोषण, अत्याचार और हत्या शुरू कर दी। नतीजा यह हुआ कि मनुष्य और पशु के बीच एक भय पैदा हो गया। जिससे कुछ जानवर शिकारी बन गए और मनुष्यों ने भी शिकारी जानवरों की नकल शुरू कर दी। मूल रूप से मनुष्य पशुओं को खाने वाला नहीं बल्कि उनका मित्र था। वह अपने आनंद के लिए पशुओं का शिकार नहीं करता था। बल्कि वह हिरण, शेर और दूसरे पक्षियों के साथ खुशी से खेलता था। वह समय था जब मनुष्य वास्तविक रूप से सभ्य था।

अगर मनुष्य वास्तविक रूप से शिकारी व मांस खाने वाला था, फिर लाखों पुरुष व स्त्रियों का पशुओं के वध करने से जी क्यों मिचलता है? जब वह पकाया या खाया जाता है तो उसके माँस से बदबू क्यों आती है?

फिर जहाँ बकरे का माँस या मुर्गी का माँस लटका हुआ या खाया जा रहा है तो लोग उससे दूर जाना क्यों पसन्द करते हैं? क्या मनुष्य फलों

और सब्जियों को देख कर भी नफरत करता या नाक सिकोड़ता है? दूसरी ओर बहुत से लोग किसी भी जानवर की टांग (Legs), जीभ (Tongue) या शरीर के दूसरे हिस्से की परोसी हुई तरकारी को देख कर घृणा करते हैं और बेहोश हो जाते हैं। केले या संतरे का छीलना, सेब का काटना या आलू का उबालना मन में ऐसी भावना उत्पन्न नहीं करता जैसा कि किसी जानवर या पक्षी के गले या पैर काटने या उसके माँस को उबालने, भूनने या तलने से होती है। इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य मूल रूप से माँसाहारी नहीं था। फिर अगर मनुष्य शुरू से शिकारी था तो मनुष्य माँस को बिना उबाले, तले और नमक मिलाने के वैसी ही अवस्था में क्यों नहीं खाता? इससे पता चलता है कि उसको यह आदत जानवरों से पड़ी है और इसे पका कर स्वादिष्ट बनाना, यह आदत उसने मनुष्यों की मिला दी है।

अगर तर्क– वितर्क (Argument) के लिए यह मान लिया जाए कि मनुष्य शुरू से शिकारी था। तो हमें यह याद रखना चाहिए कि हम ऐसे मनुष्यों के बारे में बात कर रहे हैं जो अपने आप को सभ्य और उन्नत समझते हैं और जिनमे सोचने-समझने व तर्क करने की क्षमता है। आज का मनुष्य शहरों में रहने वाला है, न कि गुफाओं में। फिर किसी मूर्ख और असभ्य का उदाहरण क्यों दें? क्या हमें शिकारी, जल्लाद, कातिल, मारने वाला और निर्दयी व्यक्तियों का अनुकरण (follow) करना चाहिए? फिर हमारे पास नागरिक शास्त्र (Civics), आचार नीति (Ethics), नियम और ज्ञान की ऐसी शाखाएं क्यों हैं?

आधुनिक जीव-विज्ञान (Modern Biological Sciences) भी यह

कहता है कि मनुष्य की शारीरिक रचना इस प्रकार की है जिससे वह प्राकृतिक रूप से शाकाहारी और फलाहारी है। मनुष्य के दाँतों में वह नुकीलापन भी नहीं हैं जो कि मांसाहारी पशुओं में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त माँसाहारी जानवरों की भोजन प्रणाली या आँतें मनुष्यों की अपेक्षा छोटी होती हैं जिससे मल त्यागने में लम्बा समय न लगे और सड़न न हो। इसके अतिरिक्त मनुष्य के लार का असर क्षारयुक्त होता है जबकि मांस खाने वाले या शिकारी जानवरों की लार में खट्टापन होता है, इसलिए क्षारयुक्त लार मांस पर सही असर नहीं डालती क्योंकि इसमें खट्टापन काफी मात्रा में बनता है। इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य में प्राकृतिक दृष्टि से मांसाहारी होने के लिए शारीरिक अनुरूपता नहीं है। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि मनुष्य मूलरूप से शिकारी या माँस खाने वाला है? क्या मनुष्य के ऐसे नाखूनी पंजे (Claws) और नुकीले दाँत हैं जिससे उसे शिकारी माँसाहारी कहा जा सके? अगर यह कहा जाए कि मनुष्य जानवरों को पत्थर और गदा (Clubs) से मारा करता था या बाद में उसने पत्थर के हथियार खोज लिये थे, तब इसका मतलब यह है कि उनको खोजने से पहले वह एक शाकाहारी या फलाहारी होगा। फिर मनुष्य फल क्यों नहीं खाता जबकि पेड़ इन्हें काफी मात्रा में उगाते हैं और ये ज्यादा स्वादिष्ट हैं।

इसके अलावा यह भी स्पष्ट रीति से जानना आवश्यक है कि मांस खाना दूसरे बहुत से कारणों से भी नुकसानदायक है। इनमें से एक कारण यह है कि जानवर बूचड़खाने में कसाई के द्वारा अपनी मौत को आता देख कर घबरा जाते हैं। डर से जैसा कि पता है कुछ मल बाहर निकल जाता

है, मल (Secretions) जब खून में जाता है तो ज़हरीला और नुकसानदायक बन जाता है। सानफ्रांसिस्को (अमेरिका) और कहीं और भी हुई खोंजों से यह पता चलता है कि बहुत से लोगों की मृत्यु जोकि मीट खाने के पश्चात् भयंकर रूप से बीमार हो गये थे, उसका अधिकतर कारण जानवर की बीमारी थी, जोकि मरने के डर से हो गयी थी। जानवर, हत्या से पहले स्वस्थ और ताकतवर था, वह एक घण्टे से ज्यादा आत्मरक्षा के लिए लड़ता रहा लेकिन जैसे ही उसका पुरुषार्थ बेकार होता जा रहा था उतना ही उसका डर से आवेश (frienzied) बढ़ता जा रहा था। उसने काफी संघर्ष किया जिससे वह गुस्से में आ गया, उसकी आँखें लाल सुर्ख हो गयीं और मुँह से झाग आने लगी। चिकित्सकों की खोज के अनुसार उसके डर और गुस्से ने उसके माँस को ज़हरीला बना दिया। साँड़ का माँस भी जोकि लड़ाई के अखाड़े में मारा जाता है, काफी ज़हरीला बन जाता है या खरगोश का माँस भी, शिकारी कुत्तों (Hounds) के पीछा करने के पश्चात् मारे जाने से ज़हरीला बन जाता है।

इसके अतिरिक्त यह भी याद रखना चाहिए कि जहाँ फल और सब्जियां आहिस्ते-आहिस्ते सड़ती हैं, मांस काफी तीव्र गति से सड़ता है। जैसे ही जानवर की मृत्यु होती है उसका मांस सड़ना शुरू हो जाता है। इसलिए माँस खाना किसी मुर्दे को खाना है। सच्चाई यह है कि जानवर का माँस तत्काल सड़ना शुरू हो जाता है, यह निरीक्षण (Observation) से भी प्रमाणित (Corroborated) किया जा चुका है कि माँसाहारी पशुओं का चेहरा आक्रमणकारी होता है जबकि शाकाहारी पशु का चेहरा शांत

(In-offensive) और निरपराध होता है। इसलिए अगर मांस खाने की परम्परा है भी तो इसका गलत रिवाज होने के कारण विरोध करना चाहिए। दासता (Slavery) और बन्धुआ मज़दूर (Bonded labour) इत्यादि की परम्परा बहुत से देशों में रही है, क्या आज का मानव इन परम्पराओं को छोड़ता नहीं जा रहा है?

प्रश्न – *कर्म-दर्शन (Philosophy of Karma) कहता है कि हर जीव सुख-दु:ख अपने कर्मों के अनुसार पाता है। इसलिए हम भी क्यों नहीं सोचें कि बकरे, मूर्गे इत्याादि को कसाई की दुकान पर दु:ख मिलता है या दूसरे पशु भी कसाई की दुकान में अपने कर्म अनुसार फल भोगते हैं? उनके शरीर का अन्त वध के द्वारा इसलिए होता है क्योंकि यह उनके कर्मों का हिसाब-किताब है। और जब उनका वध होता है तो इसमें मनुष्य की ग़लती ही क्या है जो बेकार जाने से वह उसके मांस को भोजन के लिए इस्तेमाल कर ले?*

उत्तर – यह वास्तव में एक विचित्र तर्क है जो कि गलत धारणाओं पर आधारित है जैसाकि शेक्सपीयर ने कहा है कि शैतान भी धर्म-पुस्तक का आधार अपने लिये ही लेता है।

जब एक आदमी दूसरे को कत्ल करता है, तब हम भी ऐसा ही क्यों नहीं कहते कि यह उसके कर्मों का हिसाब-किताब ही कुछ ऐसा था जिससे उसके शरीर का अन्त इसी प्रकार से हुआ। फिर अदालत भी उसे इस आधार पर आज़ाद क्यों नहीं कर देती कि यह तो दूसरों के कर्मों के हिसाब को पूरा करने में केवल निमित्त मात्र था। फिर कोई व्यक्ति अपने पुत्र को

तेज रफ्तार से जाते हुए ट्रक के नीचे क्यों नहीं आने देता या किसी मित्र का कत्ल गला घुटवा कर क्यों नहीं करवा देता, यह समझते हुए कि यह उसके कर्मों की वजह से हुई है। कातिल पर इस प्रकार के अपराध का दोष लगाया जाता है और उसे मृत्यु दण्ड या उम्र कैद होती है। वह सारी उम्र जेल में पड़ा हुआ क्षीण होता जाता है और उसके मित्र और सम्बन्धी भी उसका त्याग कर देते हैं। वह बिल्ला और रंगा जैसे अपराधी कहलाया जाता है। जिनको कि चोपड़ा के बच्चों की हत्या के अपराध में फाँसी पर लटका दिया गया था। तब मनुष्य इसे नीच कार्य समझ कर इससे शिक्षा क्यों नहीं लेता कि वह जानवरों की हत्या अपने भोजन के लिए न करे जिससे वह उस दर्द से बच सकें जो कि किसी को फाँसी देने या जेल से अनुभव होता है।

मनुष्य को इस सच्चाई पर गहराई से सोचना चाहिए कि अगर पशु की हत्या उसके कर्मों की वजह से हुई तो हत्यारे और मांस खाने वालों का एक दिन क्या होगा? इसके ये कर्म उसे कहाँ ले जाएंगे? मनुष्य कर्मों का सिद्धांत स्वयं पर क्यों नहीं लगाता?

शाकाहारी सिद्धान्त से सम्बन्धित कुछ प्रश्न

माँसाहारी कुछ प्रश्न उठाते हैं जो काफी महत्त्व वाले दिखाई देते हैं परन्तु गहराई से ध्यान देने पर उनमें से कुछ कल्पित हैं और कुछ नैतिक सिद्धान्तों से सम्बन्धित हैं। उनमें से कुछ पर चर्चा यहां की गई है।

प्रश्न – *टुन्ड्राज (Tundras), उत्तरी ध्रुव (North Pole), ग्रीन लैण्ड (Green land) इत्यादि कुछ ऐसे स्थान हैं जहां किसी प्रकार की सब्जी पैदा नहीं होती, ऐसे स्थानों पर मनुष्य को जीवित रहने के लिए क्या खाना चाहिए?*

उत्तर – मनुष्य की शारीरिक रचना, उसकी चमड़ी और आंतों से पता चलता है कि प्राकृतिक रूप से वह खेती-बाड़ी और ग्रामीण जीवन के योग्य है और वह सामान्य ग्रीष्म या शरद जलवायु में रहने योग्य है। इसलिए उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव, ग्रीनलैण्ड या टुन्ड्राज उसके रहने के लिए नहीं, जैसे माउन्ट एवरेस्ट एक प्राकृतिक जीवन के अनुरूप स्थान नहीं है। इसलिए कोई कारण नहीं कि मनुष्य ऐसे अति-जलवायु के स्थान पर जाकर रहने का एक स्थायी स्थान बनाये।

नदियों के किनारे, झीलों के पास, पहाड़ियों के ढलान (Foot of hills) इत्यादि-इत्यादि प्राकृतिक स्थान हैं जहां खेती-बाड़ी हो सकती है। मनुष्य अति-ठण्ड के स्थानों पर वैज्ञानिक या सामाजिक खोज के लिए कुछ समय के लिए तो जा सकता है। और जिस प्रकार से खोज के लिए वह दूसरी चीज़ों का प्रबन्ध करता है वैसे ही उसे खाने की विभिन्न चीज़ों का प्रबन्ध भी करना चाहिए। अगर कोई देश अपने लोगों के लिए ऐसे स्थान पर बस्ती बनाता है तो उसे पड़ौसी देशों से ज़रूरत की चीज़ों का भी प्रबन्ध

करना चाहिए।

ग्रीनलैण्ड, टुण्ड्राज इत्यादि में खान-पान की समस्या नहीं है क्योंकि ज्यादातर लोग ऐसे स्थानों पर रहते हैं जहां फसल होती है या अन्न सम्बन्धति दूसरी चीज़ें होती हैं। वहां से पैकेटों में खाना या दूसरी खाने की चीजें प्राप्त की जा सकती हैं। ग्रीनलैण्ड या टुण्ड्राज में मनुष्य का जीवन एक आदर्श या प्राकृतिक नहीं है। जो मनुष्य इन कठिन स्थानों पर रह रहे हैं उन्हें चाहिए कि वे कृषि-प्रधान देशों में आकर रहें, इसकी अपेक्षा कि वह यह कल्पित प्रश्न करें कि अगर वे ऐसे स्थानों पर जाएं तो क्या भोजन करें? यहाँ आदम और ईव की संतान के लिए आदरणीय जीवन बिताने के लिए विश्व में काफी स्थान है। इसकी अपेक्षा कि वे कम पढ़े-लिखे और ध्रुवों पर रहने वाले मुट्ठी भर लोगों की नकल करें या उनके लिए अपने सुन्दर सिद्धांतों का त्याग करें।

प्रश्न – *अगर हम मुगल और अंग्रेजी समय का इतिहास और सिकन्दर का हमला इत्यादि बुद्धि में रखें तो शायद हमें यह जंचता है कि मांस खाने वाले देश ज्यादा शक्तिशाली होते हैं, वह शाकाहारी देशों पर राज्य कर सकते हैं। इस तरह से शाकाहारी का प्रचार क्या एक देश को कमज़ोर बनाना नहीं है?*

उत्तर – वास्तव में नहीं, यह प्रश्न इतिहास की एक गलत विचारधारा पर आधारित है। अगर माँस, मनुष्य को ज़्यादा शक्तिशाली, विजयी और राज्य करने वाला बनाता है तो फिर एक प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या जर्मनी ने दूसरे विश्व युद्ध में फ्रांस और पोलैंड पर इसलिए विजय प्राप्त

की थी कि जर्मनी के निवासियों ने फ्रांस और पोलैंड से ज्यादा मांस खाया था? यह बनावटी और हास्यप्रद होगा अगर हम जीत और हार को मांस खाने के रूप में देखें। हमें इतिहास की व्याख्या वास्तविक रूप में करनी चाहिए। कोई यह प्रश्न पूछना चाहेगा कि अगर शाकाहारिता किसी देश की पराजय का कारण बनती है तो फिर रोमन्स का क्या हुआ था जिन्होंने एक बार सारे यूरोप और अफ्रीका के कुछ भाग पर राज्य किया। फिर तातार (Tatar) और मंगोलस (Mongols) को क्या हुआ था जो एक बार सब देशों के लिए भय का रूप बन गए थे? क्या उन्होंने माँस खाना छोड़ कर साग-सब्जी खानी शुरू कर दी थी? हमें भारतीय इतिहास के बारे में विचार चाहिए। क्या चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्यूकस को नहीं हराया था? जाट ओर मराठों ने विशाल मुस्लिम साम्राज्य में हलचल पैदा कर दी थी। यशोदरमन (Yashodorman) ने हनज को भगा दिया था। राजपूतों ने भी काफी बहादुरी दिखाई हालांकि जिनके खिलाफ वो लड़े थे वे ज़्यादा माँसाहारी थे।

इसलिए सैनिक जीत और हार को इस तरह से शाकाहारिता के साथ नहीं जोड़ना चाहिए चूंकि उसके लिए कुछ और भी विशेष कारण हैं। जैसे उदाहरण के तौर पर अगर कोई देश आन्तरिक विरोध और आपसी वैमनस्य और जातीय शत्रुता से छिन्न-भिन्न है, अगर उन्हें बेहतर युद्ध कौशल का परिचय नहीं है और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के सरल साधन इत्यादि नहीं है तो उस देश की पराजय हो सकती है, फिर चाहे इसके निवासी कितने ही बहादुर क्यों न हों। फिर कुछ ऐसे भी हमलावर हुए हैं जिन्होंने बहादुरी या युद्ध-कौशल से गुलाम नहीं बनाया

बल्कि उन्होंने मक्कारी, धोखेबाजी अपनायी। जैसे महमूद गजनगी या मोहम्मद गौरी ने किया या अंग्रेज शासकों ने किया। इसके अतिरिक्त आजकल के युद्ध इतना बाहुबल पर निर्भर नहीं करते जितना कि वे अच्छे किस्म के हथियारों और आधुनिक वैज्ञानिक हथियार और दूसरे कारणों पर निर्भर करते हैं।

यह भी मालूम रहे कि वैज्ञानिक खोजों से मालूम पड़ा है कि शाकाहारी मनुष्यों में सहनशक्ति, कार्य-क्षमता इत्यादि मांसाहारी लोगों से कहीं अधिक है। उसके लिए उदाहारण भी दिय जो सकते हैं।

प्रश्न – *क्या हम यह कह सकते हैं कि अक्सर मांसाहारी लोग शाकाहारियों की अपेक्षा ज्यादा बुद्धिवान होते हैं?*

उत्तर – वास्तव में ऐसा नहीं है, बुद्धिमता मांसाहारी समाज में एक दूसरे से उतनी भिन्न है जितना कि शाकाहारी समाज में एक-दूसरे से भिन्न है। अनेक बुद्धिमान शाकाहारी हुए हैं जैसे कपिल, व्यास, पाणीनी (Panini), पातांजली (Patanjali), शंकराचार्य, आर्यभट्ट, अरस्तू (Aristotle), प्लेटो (Plato), सोक्रेट (Socrates), पायथागोरस (Pythagoras), सेंट मैथ्यू (St. Matheue), फ्रांसिस द असीस (Francis d' Assisi), इसाक (Issak), न्यूटन (Newton), गलयाबलदी (Galiabaldi), लोके (Locke), मारकोनी (Marconi), मिलटन (Milton), रोजे (Rousseau), शैली (Shelly), थोरयु (Thoreau), टालसटोय (Tolstoy), बरनार्ड शा (Bernard Shaw), वोलटेअर (Voltaire), महात्मा गाँधी इत्यादि। हालांकि पश्चिमी देशों में खोज के अच्छे साधन हैं,

लोग वहां ज्यादा खोज कर रहे हैं। इसलिए इसे मांसाहारी के साथ जोड़ना हास्यप्रद होगा। निश्चित रूप से आध्यात्मिक और नैतिक विकास को शाकाहारी आदतों के साथ जोड़ा जा सकता है। जैसा कि ऊपर की सारिणी से पता लगता है। बुद्ध भी शाकाहारी था, हालांकि प्रत्यक्ष रूप से इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि क्राईस्ट शाकाहारी था पर अप्रत्यक्ष रूप से यह सूचना मिलती है कि वह शाकाहारी था। अगर हम उसके दिन के अन्तिम भोजन पर नजर डालें तो पता चलता है कि उसने मछली कभी नहीं खाई।

प्रश्न – *अगर हमें डॉक्टर मांसाहारी भोजन के लिए कहें तो हमें क्या करना चाहिए?*

उत्तर – डॉक्टर से कहो कि वह तुम्हें उसका कोई विकल्प बताये। वास्तव में ऐसी खाने की बहुत-सी चीजें हैं जिनको हम एक-दूसरे के बदले में खा सकते हैं। उदाहरण के तौर पर सोयाबीन में काफी प्रोटीन होते हैं, अत: प्रोटीन के लिए मांस खाने की आवश्यकता नहीं।

जब महात्मा गांधी का बच्चा बीमार था तब डॉक्टर ने उन्हें मांस का घोल (Soup) देने के लिए कहा था। डॉक्टरों ने कहा था कि अगर यह नहीं दिया गया तो बच्चा जिन्दा नहीं रह सकता। लेकिन महात्मा गांधी ने बताया कि किस प्रकार से वह एक तरफ बच्चे का जीवन और दूसरी ओर सिद्धान्तों के बीच फँस गये थे। जबकि बच्चा नाबालिग था, महात्मा गांधी को ही अन्तिम निर्णय करना था और जिस प्रकार से उन्हें विश्वास था कि 'श्रेष्ठ साधन से श्रेष्ठ परिणाम होता है'– उन्होंने यह फैसला किया कि वह माँस का घोल (Meet Soup) नहीं देगा चाहे इसका कुछ परिणाम क्यों न

हो। इसके बदले में उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना की। इनके पक्के विश्वास ने कि श्रेष्ठ कर्मों का श्रेष्ठ फल होता है – बच्चे का जीवन बचा दिया।

जोर्ज बरनार्ड शा विख्यात नाटक-लेखक को भी ऐसी ही परिस्थितियों का सामाना करना पड़ा था। उसके डॉक्टर ने उसे कहा था कि अगर उसने मीट नहीं खाया तो वह मर जाएगा। उसका उत्तर इस प्रकार था – ''हमें यह परीक्षण करना चाहिए। अगर मैं जिन्दा रहा तो मैं भी उम्मीद करूँगा कि तुम सब भी शाकाहारी बनोगे।'' बरनार्ड शा जीवित रहा और वह चालीस वर्ष तक जिया। और इसी बीच डाक्टर उसे इसी प्रकार की चिकित्सा सम्बन्धी परामर्श देते रहे। एक बार ऐसा अवसर आया कि शा ने लिखा है –

''मेरी हालत गम्भीर है, जीवन मुझे इसी आधार पर मिल सकता है कि मैं गौ-माँस का भूना हुआ टुकडा खाँऊँ। लेकिन मौत जीव-भक्षण से ज्यादा प्रिय है। मैं वसीयत करता हूँ कि मेरे जनाज़े के पीछे शोकाकुल लोगों की सवारियाँ न चलें परन्तु बैल, भेड़ें, मुर्गियाँ तथा जीवित मछलियों का समूह पीछे चल रहा हो। ये सभी, ऐसे व्यक्ति जिसने मृत्यु स्वीकार की परन्तु साथी जीवों को नहीं खाया, के सम्मान में सफेद कपड़ा ओढ़े हुए हों। यह दृश्य नोहा आर्क को छोड़ कर सर्वोत्तम दृश्य होगा।''

दूसरे अवसर पर उसने लिखा है—''हम स्वयं से पूछें कि कितनी जल्दी 'जानवरों को मारने के लिए उनका पोषण' एक मुख्य दण्डनीय अपराध घोषित होगा।''

मुख्य रूप से एक नैतिक प्रश्न

इसलिए हर दृष्टिकोण से शाकाहारिता ही एक सही व अच्छा भोजन है। लेकिन, जबकि हर तरह के वैज्ञानिक एवं गणितीय आँकड़ों का सहारा भी शाकाहारीपन के लिए दिया जा सकता है, यह प्रश्न विशेष रूप से मानवता व नैतिकता पर आधारित है। माँसाहारियों को यह भी सोचना चाहिए कि यह शरीर के लिए कितना हानिकारक है। हमें इस ओर भी ध्यान देना चाहिए कि माँसाहारी होने के नैतिक व आध्यात्मिक कुप्रभाव क्या हैं? शताब्दियों से माँस खाने का मानव पर यह प्रभाव पड़ा है कि वह शनैः शनै निर्दयी बनता गया है और आज तो मानव यहाँ तक पहुँच गया है कि उसने इतने भयानक आविष्कार कर लिए हैं कि वह लाखों को एक सेकण्ड में समाप्त कर सकता है। इस कला में उसने निर्दयी-से-निर्दयी, नीच-से-नीच और क्रूर-से-क्रूर को भी पछाड़ दिया है। आज के समाज में मनुष्य अस्पतालों, पूजा के स्थानों, अनाथालयों इत्यादि पर भी हमला करने से नहीं चूकता। आधुनिक समाज में, जिसे काफी सभ्य कहा जाता है, मनुष्य की श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ दूसरों का शोषण करने और विश्वासघात इत्यादि में परिवर्तित हो गई हैं। माँसाहारी होने की आदत भी मनुष्य की अच्छी प्रवृत्तियों को निर्जीव करने में कम जिम्मेदार नहीं है।

परिणाम

यह उचित होगा कि हम इस लेख की समाप्ति, पायथागोरस के 'मांसाहार पर एक लेख' की कुछ लाइनों से करें जो कि 200 वर्ष पूर्व लिखा गया था– ''आप यह जानना चाहते हैं कि पायथागोरस को किस

आधार ने माँस-भक्षण से दूर रखा। परन्तु मुझे यह खुद आश्चर्य होता है कि वह मनुष्य जिसने पहली बार अपना मुंह खून से गन्दा किया होगा और किसी मारे हुए जानवर के मांस को अपने होंठों से छूने दिया होगा उसे किस प्रकार की अनुभूति हुई होगी? कौन था जिसने अपनी खाने की मेज को वध किये हुए शरीर के टुकड़ों से सजाया और इसे रोज़ का अपना स्वादिष्ट भोजन बनाया?''

वह आगे कहता है—''किस जीवन संघर्ष या किस पागलपन ने अपने हाथों को खून में लथपथ करने के लिए तुम्हें प्रेरित किया है जबकि तुम्हारे पास जीवित रहने के लिए हर प्रकार की आवश्यक चीज़ें हैं?''

''आप धरती माँ को क्यों बदनाम करते हो जैसेकि वह आपका पालन-पोषण नहीं कर सकती? धरती द्वारा बख्शे फल-फूलों के साथ खून मिश्रित करते हुए क्या आपको लज्जा नहीं आती? जीवों के मांस के कुछ अँश के लिए तुम उन्हें सदा की नींद सुला देते हो कि वह सूर्य की रोशनी न देख सकें ! वे दु:ख भरी आवाजों में चिल्लाते हैं कि तुम हमें स्वयं के पेट की भूख मिटाने के लिए नहीं मार रहे परन्तु मर्यादाहीन, विलासितापूर्ण भूख को पूर्ण करने हेतु हमारी जान ले रहे हो।''

सिनेमा का अधिकतर प्रभाव — अच्छा है या बुरा?

वैज्ञानिकों ने अब तक जो आविष्कार किये हैं, उन आविष्कारों में से हरेक का अपना अलग ही महत्त्व है। कुछ आविष्कार तो ऐसे हैं कि जिनसे मनुष्य की सुख-सामग्री बढ़ी है और उसके कार्य की गति काफी तीव्र हुई है परन्तु कुछ आविष्कार ऐसे भी हैं जो संसार भर को ध्वस्त करने की क्षमता रखते हैं। इस प्रकार विज्ञान के अन्य आविष्कारों की भी अन्यान्य श्रेणियां बनाई जा सकती हैं, परन्तु इन सबसे सिनेमा या मूवी (चलचित्र) रूपी आविष्कार अपने प्रभावों और निहित सम्भावनाओं (Potentialities) के कारण अपने में एक अलग ही श्रेणी का आविष्कार है। उसका यदि सदुपयोग किया जाए तो उससे एक नई सभ्यता का उदय भी हो सकता है। यदि उससे जन-मानस को विकृत किया जाए तो सैंकड़ों-हजारों वर्षों की संस्कृति को कुछ ही दशकों में मलियामेट भी किया जा सकता है।

हमने ऊपर विनाशकारी आविष्कारों के बारे में भी बात कही है। एटम बम उसी श्रेणी का आविष्कार है। परन्तु एटम बम को हर आये दिन किसी नगर पर नहीं फेंका जाता। दूसरी प्रकार के आविष्कारों में बिजली का नाम लिया जा सकता है, परन्तु बिजली से तो कारखाने चलते हैं, इससे हर कारखाने में सैंकड़ों-हजारों लोगों को रोजगार मिलता है और उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन होता है और हजारों अन्य प्रयोग होते हैं। बिजली का प्रायः मानव-समूह को हानि पहुँचाने के कार्य में प्रयोग नहीं किया जाता, परन्तु सिनेमा की तो बात ही अलग है। इसके तो दिन भर में चार-चार,

पाँच-पाँच शो होते हैं और हमारे देश में तो लोग लम्बी-लम्बी क्यू (Queue) में खड़े होने की असुविधा स्वीकार करते हैं। कहा जाता है कि वे वहाँ मनोरंजन के लिए जाते है, परन्तु मनोरंजन के नाम पर आज जो कुछ वहां दिखाया जाता है, उसका प्रभाव तो जन-मानस पर अच्छा नहीं पड़ता। यों तो फिल्म शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण साधन है क्योंकि यह रुचिकर तरीके से नेत्रों अथवा कानों द्वारा मनुष्य के मन पर प्रभावशाली रीति से किसी बात को पहुँचा सकता है। परन्तु आज हमारे देश में यह मुख्य तौर पर कामोत्तेजक एवं हिंसोत्तेजक सिनेमा के रूप में प्रयोग हो रहा है और उसमें जो कुछ दिखाया जाता है, वह निश्चय ही हमारी प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति के लिए घातक है।

अच्छे मनोरंजन की विशेषताएँ

वास्तव में मनोरंजन कोई बुरी चीज नहीं है बल्कि जीवन का एक आवश्यक अंग है, इससे मनुष्य फिर से एक ताजगी का अनुभव करता है। मनोरंजन आज के चिन्ता और तनाव भरे वातावरण से छुटकारा पाने का एक साधन है। परन्तु मनोरंजन अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। हमारे विचार में अच्छे मनोरंजन निम्नलिखित मर्यादाओं का पालन करते हैं –

१. वे मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, नैतिक व आध्यात्मिक पहलू में उन्नति करते हैं। कम-से-कम वे मनुष्य की नैतिक व आध्यात्मिक उन्नति के घातक नहीं होते।

२. वे मनुष्य के मन को उत्तेजना देने वाले, उसकी वासनाओं को

भड़काने वाले, उसकी सादगी, सरलता और मितव्यता के लिए हानिकारक नहीं होते।

३. वे मनुष्य के लिए आमोद-प्रमोद, हास्य-परिहास या उसकी उछल-कूद और खुशी के साधन तो होते हैं परन्तु वे ऐसे नहीं होते कि जिन्हें मनुष्य अपने माता, अध्यापकों या सम्मानीय महानुभावों की उपस्थिति में प्रयोग न कर सके।

४. उनमें मातृ-शक्ति का अनादर नहीं होता।

इस बात से कोई भी इन्कार नहीं करेगा कि ऐसे मनोरंजन श्रेयस्कर नहीं होते जिनसे संसार में अमर्यादा और उच्छृंखलता फैले और जो मनुष्य को हिंसा, खर्चीले और थोथे फैशन, भोग-तृष्णा, कुटिलता आदि-आदि के संस्कार डाले क्योंकि इससे अच्छे समाज की नींव ही हिल जाती है। हम इस बात को एक-आध उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं –

एक जमाना था जब रोम के रोमन कैथोलिक लोग कैथोलिक मत को न मानने वाले कुछ विधर्मियों को भूखे शेर के सामने डाल देते थे और इस दृश्य को देख कर खूब खिलखिलाते थे। गोया उनके लिए वह एक आमोद एवं मनोरंजन का साधन था। परन्तु स्पष्ट है कि वास्तव में वह मनुष्य में निर्दयता, क्रूरता एवं धार्मिक-संकीर्णता के संस्कारों को पक्का करने वाला एक मीठा विष था जिससे अन्ततोगत्वा वह सभ्यता ही नष्ट हो गई। आज कोई भी अच्छे स्वभाव का व्यक्ति रोम के कैथोलिक्स के तत्कालीन इस कथित मनोरंजन को ठीक नहीं मानेगा।

इसी प्रकार, आधुनिक काल में हम अपने देश में हर वर्ष देखते हैं कि

होली के अवसर पर कुछ लोग रंग डालने के अतिरिक्त अभद्र अट्टहास, असभ्य छेड़छाड़ एवं अमानूषिक हरकतें करते हैं। वे बस में जाते यात्रियों पर अचानक से रंग या पानी के गुब्बारे मारते हैं, प्लेटफार्म पर खड़ी होने वाली गाड़ियों पर पथराव करते हैं, राह जाती कन्याओं और बहनों पर अपने मकान की छतों पर से रंग डाल कर छिप जाते है या गलियों में उनके सामने मर्यादा-विरुद्ध हाव-भाव प्रकट करते हैं और अच्छे कपड़े पहन कर किसी आवश्यक कार्य पर जाने वाले व्यक्ति पर भी पिचकारी की बौछार या गुब्बारे द्वारा आक्रमण करते हैं जिससे उस व्यक्ति के वस्त्र बिगड़ जाते हैं और उसे गन्तव्य स्थान पर जाने के इरादे को छोड़ना पड़ता है। स्कूटरों पर बैठे हुए यात्रियों तथा कारों व बसों की, रंग से वे ऐसी बुरी हालत कर देते हैं कि बसों आदि को फिर से ठीक करने के लिए देश का लाखों-करोड़ों रुपया बेकार जाता है परन्तु कुछ उच्छृंखल प्रकार के व्यक्ति इस मौके को मनोरंजन का एक साधन मान कर दुखित होने वाले लोगों पर खूब खिलखिलाते हैं! अपने मकान की ऊपर की अटारी में खड़े होकर वे रस्सी के हुक (hook) या कांटा लटका कर बुजुर्गों की टोपी या पगड़ी को ऊपर खींच लेते हैं। कारों, बसों और स्कूटरों के पहियों की हवा निकाल देते हैं जिससे उनका गमनागमन ही रुक जाता है। ऐसी उच्छृंखलता को देख कर सरकार को पुलिस तैनात करनी पड़ती है। उसके बावजूद भी कई स्थानों पर मनोरंजन-मनोरंजन में छुरे चलाने की वारदातें हो जाती हैं। इस प्रकार यह मनोरंजन उनके लिए तो दिल बहलाने का साधन हो सकता है परन्तु कोई भी शिष्ट व्यक्ति इसको अच्छा नहीं समझेगा।

मनोरंजन केवल मनोरंजन नहीं, वह संस्कारोत्पादक भी है

इसके अतिरिक्त हमें यह याद रखना चाहिए कि मनुष्य जो भी कर्म करता है, चाहे वह उसका व्यवसायिक कर्म हो, चाहे वह मनोरंजन हो, चाहे वह पारिवारिक जीवन का कोई कर्म हो, वह अपने पीछे अपने कर्त्ता के मन पर एक संस्कार छोड़ जाता है। **अतः मनुष्य मनोरंजन भले ही करे परन्तु उसे यह ध्यान में रखना चाहिए कि एक-दो-घंटे में किया गया मनोरंजन चिरकाल के लिए किसी बुरी आदत का गुलाम न बना ले।** वह उसके मन का रंजन करने के साथ-साथ उस पर काला अंजन न पोत जाए। वह मनोरंजन 'आत्मभंजन' अथवा 'आत्म-वञ्चन' का रूप न ले ले।

इन सबको ध्यान में रखते हुए जब आज के सिनेमा पर विचार करते हैं तो हम देखते हैं कि उसमें कोई ऐसे तत्व होते हैं जो मनुष्य के मन को बुरे संस्कार देकर जाते हैं और जो अच्छे मनोरंजन की बताई हुई उपरोक्त विशेषताओं के विपरीत होते हैं। ये तत्व उसमें ऐसे कलात्मक तरीके से प्रयोग किये गये होते हैं कि फिल्म देखने वाले को तत्काल तो फिल्म एक मनोरंजन ही का साधन मालूम होता है परन्तु बाद में कोई अवसर आने पर जब संस्कार रूप में उसके मन में रहे हुए ये चित्र उसे किसी कुकृत्य के लिए अपनी कठपुतली बना लेते हैं, तब उसे मालूम पड़ता है कि वह फिल्म उसके लिए कितनी हानिकारक सिद्ध हुई।

१. देश के युवकों को ब्रह्मचर्य की प्रेरणा देने की बजाय पतन की ओर ले जाने का कारण

आज की फिल्मों में एक बहुत बड़ा स्थान कामोत्तेजक सम्वादों, भाव-

भंगिमाओं, प्रेमालिंगनों के दृश्यों और गीतों को दिया जाता है और 'काम' को नाम 'प्रेम' (Love) का दिया जाता है। कथानक में ऐसी परिस्थिति पैदा की जाती है जिससे किसी युवक और युवती में परस्पर वासनात्मक आकर्षण हो जाए। फिर, उनके किसी-न-किसी प्रतिद्वन्दी को दिखाया जाता है और फिर जब उनके प्रणय में बाधा पड़ती है तो उसको पार करने के लिए वे कूटनीतियां और चालें चलते हैं और फिर भी यदि सफलता न हो तो वे हत्या भी करते हैं!

इस प्रकार 'प्रेम' जो कि एक पवित्र एवं दिव्य गुण है, उसके विकृत एवं वासनात्मक रूप को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। इस सब का परिणाम यह होता है कि जो युवक और युवतियाँ ऐसे दृश्यों को देखते हैं उनमें भी ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है और वे भी ऐसे पैंतड़े इख्तियार कर लेते हैं। ऐसे समाचार कई बार समाचार पत्रों में छपे भी हैं। उदाहरण के रूप में कुछ समय पहले ब्लिट्ज में एक घटना प्रकाशित हुई थी। उसमें बताया गया था कि एक हायर सेकेण्डरी स्कूल के हॉस्टल में किशोरावस्था के दो विद्यार्थी एक कमरे में इकट्ठे रहते थे। उनके साथ वाले कमरे में एक अध्यापिका रहती थी जिसकी नियुक्ति उस स्कूल में अभी कुछ ही माह पहले हुई थी। एक रात वे दोनों छात्र एक फिल्म देख कर लौटे जिसमें एक दृश्य में उन्होंने अभिनेता को बन्द कमरे के अन्दर से चिटखनी उठा कर कमरे में जाने का तरीका देखा। रात्रि को हॉस्टल में लौटने पर उन्होंने भी अपने कमरे के साथ वाले कमरे की चिटखनी, जो कि उस अध्यापिका ने अन्दर से बन्द की हुई थी, को उसी तरह उठा कर दरवाज़ा खोला और

वे चुपके से उस अध्यापिका के पास गये और कुचेष्टा करने की कोशिश की। जब उस अध्यापिका ने चिल्लाने की कोशिश की तो उसका गला दबा कर उससे निकृष्ट कर्म करके उसका दम घोंट कर उन्होंने उसे मार डाला। जब उन्हें एहसास हुआ कि उनसे तो एक बहुत बड़ा अपराध हो गया है जिसका बहुत बड़ा दण्ड है। अत: वे हॉस्टल छोड़कर भाग गये। दूसरे दिन जब पुलिस मौके पर पहुँची तो उन दोनों के कमरे की ओर से दरवाज़ा खुला देख कर और उन्हे गायब पाकर वह समझ गई कि यह हथकंडा इन दो किशोरों ने ही किया है। पुलिस ने उनके गाँव में जाकर उन्हें पकड़ लिया। उन दोनों ने मान लिया कि यह अपराध उनसे ही हुआ था। ऐसा निकृष्ट कर्म करने का कारण पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि वे उसी रात को एक फिल्म देख कर लौटे थे जिसमें एक ऐसा दृश्य दिखाया गया था और उनका कुकृत्य इसी फिल्म का ही परिणाम था।

इसी प्रकार ऐसा एक और किस्सा कई वर्ष पूर्व समाचार पत्रों में छपा था। किसी गांव के रहने वाले एक नवयुवक और नवयुवती 'मिलन' नामक एक फिल्म देखने गए। उस फिल्म में दिखाया गया था कि नायिका के माता-पिता, नायक और नायिका के विवाह के विरुद्ध थे क्योंकि नायिका राजकुमारी थी और नायक एक साधारण नाविक था और कुमारी को एक अच्छा वर मिल सकता था। आगे दिखाया गया था कि एक दिन जब वह राजकुमारी उस नाविक की नाव में बैठ कर जा रही थी तो नाव उल्ट गई और वे दोनों नदी में कूद पड़े और उन्होंने ऊँचे स्वर में कहा कि हमारा मिलन जल में हो गया। इस फिल्म का असर उस नवयुवक और नवयुवती

पर (जिनके प्रणय में समाज बाधा बना हुआ था) यह हुआ कि सिनेमा हाल से बाहर निकल कर दोनों ने एक-दूसरे के हाथ में हाथ देकर और उन्होंने मिलन फिल्म की टिकट रूमाल से बाँध कर यह सोच कर कुएँ में छलांग लगा दी कि हमारा मिलन भी जल में ही होगा।

तो देखिये, कथित प्रेमालापों या दृश्यों का प्रभाव युवकों तथा युवतियों पर क्या पड़ता है! फिल्म में जो नदी में डूबना दिखाया गया था, वह तो काल्पनिक कहानी का एक झूठा ही दृश्य था परन्तु उनके प्रभाव में आने वाले युवक-युवतियां तो सचमुच ही अपना जीवन खो बैठते हैं।

एक जमाना था जब इस प्रकार की एक-आध वार्ता भी सारे नगर की चर्चा का कारण बन जाती थी परन्तु अब तो लोग प्रतिदिन ऐसे किस्से सिनेमा में देखने जाते हैं। पहले कभी कोई नारी आत्महत्या करती भी थी तो अपने गौरव और अपने सतीत्व की रक्षा के लिए करती थी। परन्तु देखिये तो आज वह पाश्चात्य देशों का अंधानुकरण करके वासना की पूर्ति न हो सकने के कारण जीवन से भी हाथ धो डालती है! पहले यदि किसी का अन्य किसी इच्छित व्यक्ति से विवाह नहीं भी होता था तो वह सारी आयु कुंवारा अर्थात् ब्रह्मचारी होकर रहने का व्रत ले लेता था, परन्तु आज इन फिल्मों का प्रभाव देखिये कि वे विवाह से पहले ही अवैध सम्बन्ध स्थापित करते हैं। माता-पिता से छिप-छिप कर घृणित कर्म करते हैं और विवाह न होने पर आत्महत्या जैसे कुत्सित कर्म कर डालते हैं। फिल्मों में न तो कोई डूबता है, न गाड़ी के नीचे सिर देता है, न विष ही खाता है परन्तु सामान्य जन उससे प्रभावित होकर कुल का नाम बदनाम कर देते हैं।

जिस आयु में उन्हें अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर अध्ययन में पूरा ध्यान देना चाहिए, उस आयु में वे ऐसे उल्टे कर्म सीख जाते हैं और कालेजों में ही कन्याओं के सामने ऐसे गीत गाते तथा रेगिंग (Ragging) के नाम से काले कर्म करते हैं। फिर एक बार जब उनके चरित्र का पतन हो जाता है तथा वे लज्जा को उतार देते हैं तब तो वे अध्यापकों के विरुद्ध भी आन्दोलन करने आदि में संकोच नहीं करते।

२. फिल्म से हिंसात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन

फिल्म की कहानी लिखने वाले अथवा फिल्म बनाने वाले अपनी फिल्म को अधिक बिकाऊ (Box office hit) बनाने के लिए फिल्म के लिए दूसरा आवश्यक तत्व मानते हैं – हिंसात्मक दृश्य। वे ऐसे दृश्य अवश्य दिखाना चाहते हैं जिनमें दर्शकों को 'सस्पेंस' (Suspense) हो, खतरे का आभास हो और वे सांस रोक कर सोचते रहें कि आगे क्या होगा! स्मगलरों की पुलिस वालों के साथ या पुलिस वालों की डाकुओं के साथ या नायक (Hero) की प्रतिनायक (Villain) के साथ जंग का छिड़ जाना तो फिल्मी दुनिया में एक रिवाज-सा है। कारें एक-दूसरे के पीछे बड़ी तेज-रफ्तार से भाग रही हैं और फिर उनके आगे ऐसा स्थान आ जाता है कि कार उलटने का डर है या आगे जाने का रास्ता ही नहीं है। अब अमुक व्यक्ति आगे जायेगा कैसे? वह तो अब पकड़ा ही जाएगा और फिर बचेगा कैसे? इसमें पिस्तौलों का चलना, मुक्के-बाजी दिखाना, खूब दाँव-पेच दिखाना—इसमें ही युवा वर्ग दिलचस्पी लेने लगता है और इससे अपने प्रतिद्वन्दियों से बदला लेने के तौर-तरीके और दाँव-पेच सीखने का यत्न करता है। इसी

के परिणामस्वरूप आज हम समाज में इस किस्म की वारदातें होते देखते हैं जिनमे फिल्म-दर्शक फिल्म में देखे हुए दृश्यों को व्यवहारिक जीवन में अनुकरण करता है। बैंक वैन (Bank Van) में जाते हुए खज़ाने को बन्दूक के बल से लूटना, किसी की कार का तेज रफ्तार से पीछा करके उससे पैसा ऐंठना, कहीं थोड़ी-सी बात हो जाने पर चुनौती देना, ज्युडो (Judo) तथा दूसरे दाव-पेचों का प्रयोग करना— प्रतिदिन ऐसे किस्से होते रहते हैं।

३. खर्चीले और थोथे फैशन

आज स्त्रियों के भांति-भांति से बाल बनाने, युवकों और युवतियों की नयी-नयी प्रकार की पोशाकें पहनने, मकानों को नए-नए ढंग से सजाने के नये-नये फैशन सिनेमा में देखने को मिलते हैं। अभी एक फैशन के अनुसार नव-वधुओं के कपड़े बनाये ही होते हैं और नव-युवकों ने कपड़े सिलाए ही होते हैं कि कल उसका स्थान दूसरा फैशन ले लेता है और नई फिल्मों में नया फैशन देख कर आये हुए नवयुवक और नवयुवतियाँ पहले बालों पर फब्तियां कसते हैं अथवा उसे 'ओल्ड फैशन्ड' (Old Fashioned -पुराना पंथी) बताते हैं, इस प्रकार नई हवा चलने से युवकों और युवतियों की ओर से पैसों के लिए नित्य नये तकाजे होते हैं। यों सौन्दर्य और सफाई बुरी चीज नहीं है बल्कि वह समाज ही अच्छा नहीं जिसके लोगों में कला-कौशल तथा स्वच्छता और सौन्दर्य की समझ (Aesthetic sense) न हो परन्तु सिनेमा से निकलने वाले नित्य नये फैशनों के पीछे स्वच्छता का भाव नहीं होता बल्कि प्राय: शरीर को अधिकाधिक उघाड़ना, नग्नता का प्रदर्शन

करना, लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना, अपनी चमड़ी के रंग-रूप पर इतराते हुए स्वयं को लोगों की नजरों में लाने का प्रयत्न करना होता है।

याद रहे कि उपरोक्त प्रवृत्तियां मनुष्य को नश्वर शरीर को सजाने-संवारने इत्यादि के धन्धों में लगाये रखती हैं, ये भारत की दार्शनिकता, यहाँ की संस्कृति, यहाँ के अध्यात्मवाद, यहाँ के नैतिक मूल्यों और मनुष्य के स्थायी हितों के विरुद्ध हैं। भारत देश एक तपोभूमि है, योग भूमि है, तीर्थ स्थल है, यात्रा स्थान है, प्रभु की अवतरण भूमि है और एक आध्यात्मिक देश है। संसार की संस्कृति को, विश्व की सभ्यताओं को, युग-युग के इतिहास को भारत ने नैतिकता और महानता रूपी देन दी है। इसके कारण ही किसी समय भारत सभी देशों का मुकुट-मणि था और भारत की इसी अनमोल देन को दूसरे देशों ने अंगीकार किया था। परन्तु आज यह चलचित्र जनमानस को इस संस्कृति से हटा कर इसे निरा देह-अभिमानी बना रहे हैं। आज वे नारी को 'मातृ-शक्ति' अथवा कल्याणी का दर्जा देने के बजाए उसे वासना की गुड़िया मान कर चल रहे हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि स्वयं नारियां भी इस पतनकारी चीज़ के प्रति सचेत नहीं हैं। पहले कहा जाता था कि जिस देश में नारी को 'पूज्या' माना जाता है, इस देश में देवताओं का वास होता है और आज यह माना जाता है कि जिस देश में नारी के साथ वासनात्मक सम्बन्धों की जितनी छूट अथवा स्वच्छन्दता है, वही देश प्रगति-प्राप्त (Advanced) और सभ्य है। देखिये तो कितना पतन हो गया है! अफसोस है कि लोग यह नहीं समझते कि यह सब तो चाकू, छुरी और बन्दूक से भी अधिक

खतरनाक है क्योंकि इसके विरुद्ध तो मनुष्य अपने बचाव की भी कोशिश नहीं कर रहा। वास्तव में बन्दूक और पिस्तौल से इतने नर-नारियों की हत्या नहीं होती जितनी कि गंदी फिल्मों से जन-जन की नैतिक मृत्यु होती है। सिनेमा से तो हर नर-नारी के मन में काम और हिंसा ही पनप रही है। खानदान ही तबाह हो रहे हैं, प्राचीन संस्कृति ही लुट रही है। एक आध्यात्मिक प्रधान उच्च सभ्यता का ही मलियामेट हो रहा है। देश का नक्शा ही पलट रहा है। भारत में रहने वाले व्यक्तियों से 'भारतीयता' ही नष्ट हो रही है। धर्म, ईश्वर और मर्यादा नाम की चीज ही मिट रही है।

कुटिलता की कला का प्रदर्शन

सिनेमा में दिखाई वाने वाली फिल्मों में चालाकी, हेरा-फेरी या कूटनीतियाँ, चोरी-डकैती को भी प्राय: काफी स्थान दिया जाता है। दूसरे को उल्लू बनाना, होशियारी से दूसरे को ठग लेना, चालाकी से अपना काम निकालना इत्यादि, इनमें कई दृश्यों में दिखाया गया होता है। इससे मनुष्य की सरलता, ईमानदारी, उसकी स्पष्टवादिता इत्यादि पर बुरा प्रभाव पड़ता है और धीरे-धीरे वह कुटिल और काम निकालने में उचित-अनुचित सब तरीकों को अपनाने वाला बन जाता है। इसी प्रकार, फिल्मों से वह चोरी तथा अन्य बुराइयों के भी नये-नये साधन सीखता है। आये दिन इसके कई समाचार छपते हैं।

एक बार नई दिल्ली में संग्रहालय से कुछ अनमोल ऐतिहासिक सिक्कों आदि की चोरी हुई थी और आखिर चोर पकड़ा गया था। पुलिस ने देखा कि संग्रहालय के सभी दरवाज़े अन्दर से ज्यों-के-त्यों बन्द थे। अत: उसे

अचम्भा था कि चोर भीतर घुसा कैसे और बाहर निकला कैसे? तब चोर ने बताया कि वह संग्रहालय के रोशनदान में से अन्दर आया था और यह तरीका उसने अमुक फिल्म से सीखा था।

२६ मई, १९८० को दिल्ली के समाचार-पत्रों में ऐसा एक समाचार छपा था। उसमें बताया गया था कि दिल्ली के मदनगीर इलाके के २६ वर्षीय युवक, जिसका नाम लक्ष्मण है, ने एक फिल्म देखी। उस फिल्म से उसके मन में यह विचार पैदा हुआ कि शीघ्र ही धनी बनने का उपाय किया जाएँ। लक्ष्मण जिल्दसाज (Book-binder) का धन्धा करता था परन्तु फिल्म से उसके मन में यह भाव जागा कि पैसे के लिए फलां साधन अपनाया जाय।

अत: उसने नई दिल्ली के ग्रेटर कैलाश -II में रहने वाले, वी. के. मेहता नामक व्यक्ति को लिखा कि वह उसे २३ मई को तुगलकाबाद किले के निकट १०,००० रुपये दे दे, वर्ना उसका परिणाम बहुत खतरनाक होगा।

मेहता जी उस दिन अपने नौकर तथा सामान्य वेश में कुछ पुलिस वालों के साथ उस स्थान पर पहुँचे परन्तु वहाँ उनसे वह रकम लेने कोई भी नहीं आया।

परन्तु जब मेहता जी अपने घर लौटे तो उन्हें एक दूसरा लिखा हुआ रुक्का मिला। इसमें उन्हें डाँटा गया था कि वे वह 'बारात' लेकर क्यों गए थे। लक्ष्मण ने पुलिस वालों के लिए 'बारात' शब्द का प्रयोग किया था और उसने यह भी लिखा कि मेहता जी अगले दिन अम्बेडकर रोड पर अमुक

होटल के निकट उन्हें वह रकम दे दें।

कालका जी पुलिस थाने की पुलिस ने मेहता जी को राय दी कि इस बार वे अकेले ही धन के साथ अपना रिवाल्वर भी लेकर जायें। पुलिस ने अपनी योजना पहले ही से बना रखी थी। जब लक्ष्मण वहां धन लेने के लिए आया तो उसे तुरन्त ही पकड़ लिया गया।

पूछे जाने पर लक्ष्मण ने बताया कि हिन्दी में एक फिल्म देखने का उस पर यह प्रभाव पड़ा था जिसके कारण उसने यह हथकण्डा रचा।

अब देख लीजिए, सिनेमा का मनुष्य के चरित्र पर क्या प्रभाव पड़ता है! बुराई की ओर मनुष्य जल्दी झुक जाता है; उसमें पैसे का प्रलोभन, थोड़ा-बहुत क्रोध, थोड़ी-बहुत कामुकता एवं चालाकी पहले ही से होती है; फिल्म देखने से उसमें यह संस्कार और अधिक दृढ़ हो जाते हैं तथा उसे बुरे कर्म के लिए 'प्रेरित' करते हैं। इसलिए सभी धार्मिक नेता वास्तव में इसे बुरा मानते हैं। पिछले दिनों रोमन कैथोलिक मत के प्रधान – पोप (Pope) – का भी एक वक्तव्य समाचार-पत्रों में छपा था जिसमें उन्होंने टी. वी. तक को देखने की मना की थी। अप्रैल मास में दिल्ली के समाचारपत्रों में एवार्ड (Award) प्राप्त करने वाली कुछेक फिल्मी अभिनेत्रियों ने भी कहा था कि फिल्म में कामोत्तेजक और हिंसा के लिए उकसाने वाले तत्व नहीं होने चाहिएँ।

इस प्रकार , हम देखते हैं कि आज सिनेमा द्वारा नैतिकता की बजाए अनैतिकता का प्रचार हो रहा है। धार्मिक संस्थाएं तो उसके विरुद्ध हैं ही। हाँ, फिल्मों में कुछेक धार्मिक कथाएँ भी कई बार दिखाई गई होती हैं परन्तु

उनसे भी जहाँ लोगों में थोड़ा प्रभु-प्रेम पनपता है वहाँ कुछेक धार्मिक कुरीतियों या अन्धविश्वासों का भी प्रचार होता है।

५. फिल्मों द्वारा धार्मिक बातों के बारे में भी भ्रान्तियों का प्रचार

फिल्मों में जो धार्मिक, दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक विषयों पर किसी-न-किसी प्रकार से मान्यता, विश्वास या सिद्धान्त प्रकट किया गया होता हैं, उसका परिणाम भी प्राय: श्रेयस्कर नहीं होता। फिल्म की कहानी लिखने वाले अथवा उसके निर्देशक इन मामलों में प्राय: सुविज्ञ और अनुभवी तो होते नहीं। अत: हो सकता है कि किसी धार्मिक सिद्धान्त को अपनी फिल्म में दिखाने के पीछे उनके मन में इरादा अच्छा ही हो, परन्तु प्रदर्शित सिद्धान्त मूलत: गलत होने के कारण अपनी छाप सामान्य दर्शकों पर ऐसी डाल जाता है कि बाद में उसे जीवन भर सामान्य दर्शकों के मन से मिटाना मुश्किल हो जाता है। फिल्म में जो दृश्य दर्शकों के सामने आते हैं, वे प्राय: उनके मन में प्रेम, घृणा, भय आदि आवेग (Emotions) उत्पन्न करते हैं और उस स्थिति में मनुष्य अपने तर्क एवं विवेक का अधिक प्रयोग नहीं करता जिससे वे दृश्य उसे सहज ही स्वीकार्य होते हैं और उसके मन में स्थायी वास कर लेते हैं। अत: फिल्म में देवी-देवताओं, परमात्मा या अन्य विषयों पर जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दृश्य होते हैं, वे भी भ्रान्तियाँ फैलाते हैं।

सिनेमा द्वारा मनोरंजन या प्रायः पतन

सिनेमा के बारे में दो बातें हमें विशेष तौर पर स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिएं। एक तो यह कि सिनेमा केवल मनोरंजन ही का साधन नहीं है बल्कि मनोरंजन के साथ-साथ वह शिक्षा का भी एक माध्यम है। इतना ही नहीं, **वह हमारे संस्कारों को बिगाड़ने या बनाने का भी एक महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली साधन है।** अतः सिनेमा घरों को हमें केवल एक मनोरंजन-स्थान के रूप में ही नहीं देखना चाहिए बल्कि वे स्कूलों और कालेजों से भी अधिक प्रभावशाली 'शिक्षा-स्थान' समझे जाने चाहिएं। परन्तु आज जिस प्रकार के संस्कार फिल्म के माध्यम से जन-मानस पर डाले जा रहे हैं, वे निस्सन्देह मीठे विष की तरह तत्काल मन को प्रिय लगने वाले परन्तु अन्ततोगत्वा मनुष्य की नैतिक हत्या करने वाले हैं।

बुजुर्ग लोग बताते हैं कि एक जमाना था कि अपने शरीर का प्रदर्शन करने वाली तथा नाच और गानों पर युवकों को आकर्षित करके उनके पतन के निमित्त बनने वाली गणिकाओं एवं वेश्याओं के स्थान निश्चित थे और उनकी ओर जाने में किसी भी कुलीन, सुशिक्षित एवं सभ्य व्यक्ति को लज्जा का अनुभव होता था और लोग भी ऐसे स्थानों पर जाने वाले व्यक्ति को चरित्रवान नहीं मानते थे। परन्तु दिनों का फेर है कि हवा का रुख बदल गया है। आज उन लोगों को उच्च-स्तर का नहीं माना जाता जो महीने में एक-आध बार भी फिल्म नहीं देखते। जैसे कि इस लेख में पहले कहा जा चुका है, आज वही दृश्य माता-पिता, बहू-बेटा, पुत्र-पुत्री इकट्ठे बैठ कर खुले-आम देखते हैं और देखते समय अथवा बाद में परस्पर उसकी

समालोचना भी करते हैं जिनकी चर्चा पहले कोई भी नवयुवक माता-पिता के सामने करने की हिम्मत ही नहीं कर सकता था। आज यही बात हमारे देश की गिरावट का एक बहुत बड़ा कारण है। इसी ही का परिणाम है कि आज नारियों से छेड़छाड़ (Eve teasing), भरी हुई बसों और गाड़ियों में कन्याओं-माताओं पर अभद्र अट्टहास तथा प्रतिदिन अपहरण और बलात्कार की वारदातें सुनने और देखने को मिलती हैं क्योंकि जब मां-बाप और घरवालों के सामने से ही लज्जा का पर्दा उठ गया तो बाहर वालों के सामने संकोच की बात ही कहां रह गई! आज मनुष्य भोग-वासना का दीवाना-सा हुआ है और अपने घर के बुजुर्गों के सामने भी न उसे अश्लील फिल्मी गीत गाने में संकोच है और न दोस्तों से फिल्मी नायिकाओं और नायकों के अभद्र हाव-भाव की चर्चा करने में उसे कोई अंकुश अनुभव होता है। आज तो कौरव सभा की तरह के दृश्य जहाँ-तहाँ देखने को मिलते हैं जहाँ वृद्ध जन, शिक्षक आदि भी मूक होकर चीरहरण या लज्जा के दृश्य देखते रहते हैं! शायद हमारी इस स्पष्टवादिता का कुछ लोग बुरा मानेंगे परन्तु सत्य फिर भी सत्य ही है और वह यह कि **आज के सिनेमा पाप के घर हैं। वे ऐसे स्थान हैं जहाँ से मनुष्य प्रायः वेश्यावृत्ति, हिंसा, चोरी, डकैती, धूम्रपान, शराब, मांसाहार, रिश्वत के तरीके, फरेब आदि-आदि अनेक बुराइयां सीख कर आता है। अच्छी फिल्में तो अपवाद मात्र ही होंगी।**

शुरू-शुरू में ऐसी फिल्में बनाई गई कि जिससे लोगों को यह निश्चय हुआ कि फिल्म देखने में कोई हानि नहीं परन्तु जब एक बार लोगों को

फिल्म देखने की आदत-सी हो गई तो अब ऐसी फिल्म बनने लगी हैं कि जिनसे देशवासियों के चरित्र का पतन हो रहा है। प्रारम्भ में फिल्म की अभिनेत्री बनना ही किसी कुलीन नारी को पसन्द नहीं था, न ही लोग अदाकारों और अभिनेत्रियों को चरित्रवान समझते थे और आज यह हालत है कि लोग घरों और गाड़ियों में फिल्मी पत्रिका ही पढ़ते दिखाई देते हैं, मित्रों और दोस्तों में फिल्मी अभिनेत्रियों की ही चर्चा करते हैं और घरों में फिल्मी अभिनेत्रियों ही के चित्र और कैलेण्डर लगाते हैं। यदि उनके नगर में फिल्मी अभिनेत्री आ जाती है तो वे उसे देखने के लिए भारी संख्या में इकट्ठे होते हैं और टिकट खरीद कर, धक्का-पेल बर्दाश्त करते हुए भी उन्हें देखने के लिए हजार यत्न करते हैं। **गोया अभिनेता और अभिनेत्री ही उनके जीवन के इष्ट देवता व इष्ट देवी बन चुके हैं।** आज युवकों और युवतियों को श्री कृष्ण और श्री राम के बारे में पता नहीं होगा परन्तु फिल्मी अभिनेत्रियों और अभिनेताओं के बारे में पता है। आज हालत यह है कि सड़कों पर, चौराहों पर, पान वालों की दुकानों पर, होटलों में, रेडियो पर, शादी-ब्याह के मौके पर घर में स्टीरियो (Stereo) या ट्रांजिस्टर पर फिल्मी गीत ही सुनाई देते हैं। जो प्रायःकामोत्पादक या निर्लज्जता को लिए होते हैं। जिन गीतों को पहले कुछ बदनाम लोग भी खुले आम गाने में शर्म महसूस करते थे, आज वे हर मौकेपर, हर स्थान निस्संकोच बजाये जाते हैं। आज देश में इतने विज्ञापन हैं, हर चोराहै पर लगे हुए उनके बड़े-बड़े बोर्ड (Hoardings) हैं, हर सप्ताह टी. वी. पर ऐसी फिल्में दिखाई जाती हैं, हर रेडियो स्टेशन से दिन-भर में उनके इतने फरमाइशी गीत बजते हैं

कि तोबा ही भली । सारे वातावरण में सिनेमा का ऐसा प्रदूषण है कि दम घुटता है। सारे शहर पर इसका धावा है। आश्चर्य है कि प्राय: सभी ने उसके आगे हथियार डाल दिये हैं और आत्म-समर्पण कर दिया है!

सरकार भी लाचार

सरकार को तो मनोरंजनकर (Entertainment Tax) से तथा अन्य प्रकार के करों (Taxes) आदि के रूप में काफी आमदनी होती है। वह स्वयं भी तो जनता ही में से चुनी हुई है। अत: वह इस विषय में कुछ भी नहीं कर पा रही है। सेंसर बोर्ड कामोत्तेजक फिल्मों को भी 'A' निशान देकर अथवा (For Adults only) केवल बालिगों के लिए पारित करके अभद्रता के प्रचार की छूट देता है। वर्ना सोचने की बात हैं कि बालिग व्यक्ति भी तो एक मानव ही है, उसके लिए क्या ऐसी फिल्में नैतिक दृष्टिकोण से हानिकारक नहीं हैं?

यदि फिल्म प्रोड्यूसरों तथा निर्देशकों से कहा जाये कि वे ऐसी फिल्में बनाना बन्द करें तो वे कहते हैं कि ''जब जनता ही ऐसी फिल्में पसन्द करती है तो हम क्या करें?'' उनका कथन है कि आज एक फिल्म बनाने पर बहुत ही अधिक खर्चा आता है और यदि लोग अधिक संख्या में उसे न देखें तो उनका सारा धन ही डूब जायेगा। इस प्रकार, उन्हें तो अपनी कमाई में दिलचस्पी है, देशवासियों के चरित्र की लुटिया डूबती है तो इससे उनका कोई वास्ता नहीं।

आखिर क्या हो ?

ऐसी स्थिति में अच्छा तो यही है कि सरकार फिल्म उद्योग का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation) कर ले और वह चरित्र-भ्रष्टता की इस बाढ़ को रोके परन्तु समय की गति और मानव की मति और धर्म की क्षति ही ऐसी है कि यदि वह भी इसे अपने हाथ में ले ले तो सरकारी कार्यकर्त्ता भी शायद ही इस कुरीति को छोड़ेंगे!

वस, केवल धार्मिक, आध्यात्मिक या नैतिक सस्थाएँ ही ऐसी होती हैं जो इसके प्रति कुछ कदम उठा सकती हैं। परन्तु आज उनमें भी प्राय: झगड़बाजी, फूट, मान-प्रतिष्ठा की भूख और पदलोलुप्ता है। आज जहाँ संगठन न हो वहाँ भला क्या सफलता हो सकती हैं? फिर आज नियमों, मर्यादाओं तथा पवित्रता के व्रतों का पालन कहाँ है और उन पर कौन इतनी दृढ़ता से ज़ोर देता है? धार्मिक संस्थाओं में जाने वाले भी तो बहुत लोग सिनेमा देखते हैं। तो भी यदि कहीं से आशा हो सकती है तो धर्म-प्रिय लोगों से तथा ऐसी संस्थाओं ही से हो सकती है जो धर्म के कार्यों में लगे हैं। फिल्म निर्माताओं में से भी शायद कुछ ऐसे निकल सकेंगे जिनकी अन्तरात्मा को प्रेरित किया जा सकता है। अत: प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय ऐसे फिल्म निर्माताओं तथा धार्मिक संस्थाओं से यह निवेदन करता है कि कम-से-कम वे राष्ट्रहित की बात तो सोचें। वर्ना एक ओर जन-जन को सत्संग के लिए कहना और दूसरी ओर कुसंग के इस जोरदार साधन में वृद्धि करना गोया मनुष्य को स्वर्ग की बजाए नरक ही का जीव बनाये रखना है।

सिनेमा से होने वाली शारीरिक हानियाँ

सिनेमा के प्रभाव से नैतिक पतन तो हो ही रहा है परन्तु बहुत लोगों को यह मालूम नहीं हैं कि इसका शरीर पर भी अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। आज मनोवैज्ञानिक तथा शरीर-विज्ञान-वेत्ता इस बात को मानते हैं कि मनुष्य के विचारों का भी उसके शरीर पर बहुत प्रभाव पड़ता है। उन्होंने देखा है कि बहुत से रोग मनुष्य की चेतना में विकृतियों के कारण से होते हैं अर्थात् उसके मन में हानिकारक विचारों का परिणाम होते हैं। विशेषकर आवेगों (Emotions) का प्रभाव शरीर पर बहुत गहरा होता है। मानसिक तनाव के बारे में जो छानबीन हुई हैं उससे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि उससे दमा, अल्सर (Ulcer), रक्तचाप में वृद्धि आदि के कई रोग होते हैं। शरीर-विज्ञान-वेत्ताओं ने देखा है कि मानव-शरीर में जो अन्त: स्राव-ग्रंथियां (Glands) हैं, उनका स्राव (Secretion) सीधे ही रक्त में जा मिलता है। विचारों तथा आवेगों का प्रभाव हमारे मस्तिष्क अधश्चेतक (Hypothalamus) पर पड़ता है और उससे वह प्रभाव हमारे अन्त:स्रावी ग्रन्थियों पर होता है और हमारे दूषित विचारों एवं आवेगों का प्रभाव पड़ने से जो विषैले स्राव निकलते हैं, वे हमारे रक्त में मिलकर रोग उत्पन्न करते हैं।

अब कुछ वैज्ञानिकों ने टी. वी. (T. V.) तथा सिनेमा देखने वालों पर जो प्रयोग किये हैं उससे वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इसमें कई ऐसे दृश्य होते ही हैं जिनसे मनुष्य में भय, आवेश, सहानुभूति आदि का उद्रेक होता है। जैसा दृश्य हो वह संबंधित मनोभाव तथा आवेग पैदा करता ही है। उससे दर्शक के हृदय की गति पर, उसकी श्वास-क्रिया पर तथा उसके

रक्तचाप आदि पर प्रभाव पड़ता है। अत: यदि फिल्म में हिंसा, उत्तेजना आदि के दृश्य हों तो वे निश्चय ही मनुष्य के शरीर पर भी धीरे-धीरे हानिकारक सिद्ध होते हैं।

सिनेमा द्वारा सबसे बड़ा प्रदूषण

यों देखा जाये तो प्राय: देश की सराकर ने पर्यावरण-प्रदूषण की रोकथाम के लिए वैज्ञानिक और संस्थान नियुक्त किए हुए हैं। परन्तु सिनेमा की फिल्मों से होने वाला मानसिक प्रदूषण तो उन सबसे बड़ा प्रदूषण है। उसकी रोकथाम के लिए भी तो सरकार को कुछ करना चाहिए।

मानसिक पवित्रता और चारित्रिक श्रेष्ठता

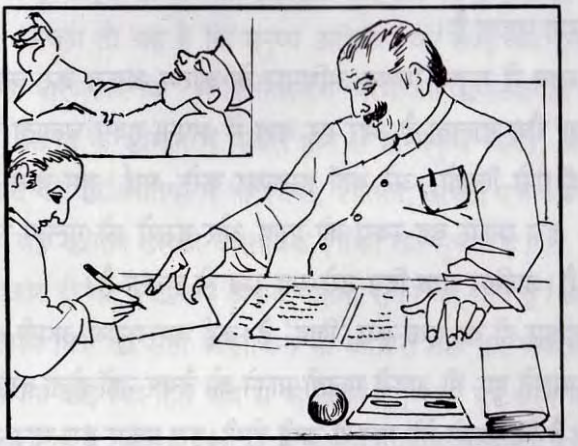

स्वयं को अहंकार से बचाओ क्योंकि इससे होता है टकराव!

अहंकार से मनुष्य दूसरों पर आतंक करता है। अहंकारी मनुष्य दूसरों को अपने से बहुत घटिया मान कर उनसे दुर्व्यवहार करता, उन्हें अपने रोब तले दबाए रखता तथा उन्हें अपमानित करता है। वह उनके स्वभाव को ठेस पहुंचा कर, उन्हें अपने विरुद्ध कर लेता तथा विद्रोह करने पर मजबूर कर देता है। अत: अहंकार अनेक झगडों की जड़ है। अहंकार के नशे में मनुष्य यह भूल जाता है कि देह नश्वर है, धन और सत्ता सदा साथ नहीं रहते और कि यौवन तथा शक्ति भी अस्थिर है। अत: वह मिथ्या अभिमान में मानसिक सन्तुलन को खो बैठता है और वह अपनी जिह्वा को कुठार की न्यायीं प्रयोग करता है और न जाने कितनों के मन को घायल कर देता है। आखिर एक दिन वह पर्वत पर से गिरने के समान अपने जीवन में चोट

अनुभव करता है, तब जब उसके अपने ही कर्मों के कारण उसे अपना सिर नीचे करना पड़ता है।

वास्तव में मनुष्य मिथ्या अभिमान के कारण अकड़ कर चलता है, दूसरों पर रौब डालता है और हर बात में अपना हुक्म चलाता है। ''मैं कहता हूँ ऐसे लिखो, अरे यहाँ हस्ताक्षर करो, भाई, तुम कैसे आदमी हो!''– इस प्रकार वह स्वयं को शाह और दूसरों को गुलाम मान कर चलता है। आखिर एक दिन उसे यह सब ले डूबता है।

अहंकार ही का एक रूप 'जिद्द' है। कई बार मनुष्य अपनी बात को गलत समझते हुए भी अपनी गलती मानने को तैयार नहीं होता क्योंकि वह समझता है कि इससे मेरे मान में कमी होगी। इस प्रकार इस मान-अपमान की मिथ्या धारणा (False Prestige) के आधार पर खड़ा होकर वह अपना सब कुछ गँवाने को तैयार हो जाता है परन्तु अपनी जिद्द नहीं छोड़ता। व्यक्ति के इसी झूठे अभिमान के परिणामस्वरूप परिवार तबाह हो जाते हैं

और राज्य धूली-धूसरित हो जाते हैं। अत: अहंकार को छोड़ना ही अच्छा है। अत: अच्छा तो यह है कि मनुष्य अभिमान को छोड़ कर इस श्रेष्ठ स्वमान को धारण करे कि ''मैं त्रिलोकीनाथ परमपिता परमात्मा की सन्तान हूँ....।'' आत्मा के स्वमान में स्थिति होने से ही मनुष्य निन्दा, अपमान, हानि आदि की परिस्थितियों में भी शान्त, शीतल, अचल एवं आनन्दमय रहता है। यह स्वमान उसकी वास्तविक शक्ति का सूचक है।

अहंकार ही का एक रूप अपनी महिमा सुनने का चाव है। अहंकारी मनुष्य अपने मित्रों की सही आलोचना भी बर्दाश्त नहीं कर सकता। यदि उसका अपना कोई मित्र हित भाव से भी किसी दुर्गुण को दूर करने के लिए उसे सुझाव देता है, उसे भी वह अपना अपमान मानता है। अपने दुर्गुण की भी आवश्यकता जतला कर, उसका कोई ऊँचा-सा लक्ष्य बता कर, उसके होने के कई कारण समझा कर उसे सुन्दर रूप में पेश करने की कोशिश तो करता ही है; परन्तु अहंकार की छाया, बुद्धि पर पड़ जाने से उसे यह भी नहीं सूझता कि दूसरों में भी इतनी समझ है कि वे मेरी इस लम्बी-व्याख्या को समझते हैं।

अहंकारी मनुष्य को अपनी खुशामद और चापलूसी सुनने की आदत ही पड़ जाती है और जो कोई भी उसकी बात पर प्रश्न उठाता है, उसे वह अपनी आँख का तिनका अथवा शहतीर मानता है। अपनी बुराई को छिपाने के लिए वह दम्भ को अपनाने लगता है और इस प्रकार दिनोंदिन गिरावट की ओर बढ़ता है। अत: अहंकार के इस अशुद्ध रूप को छोड़ कर इसे शुद्ध करने में ही मनुष्य का भला है। 'नम्रता' को धारण करने से

अहंकार स्वत: मिट जाता है।

'काम' विकार का अब करो काम तमाम

यद्यपि नाम इसका 'काम' है, इसने मनुष्य के सभी काम बिगाड़ रखे हैं और उसे चारित्रिक रूप से किसी काम का नहीं रखा क्योंकि इससे मनुष्य का मन मलीन, चित्त-वृत्ति दूषित और शक्ति क्षीण होती है और उसका पतन होता है। अतएव अब अपनी उन्नति के लिए तथा विश्व की जनसंख्या की अति वृद्धि और उससे होने वाली अनगिनत समस्याओं से बचने के लिए पवित्र बनना अथवा 'काम' विकार का काम तमाम करना अत्यावश्यक है।

नर और नारी जिस देह के प्रति आसक्ति अथवा आकर्षण के वशीभूत हो जाते हैं, वह देह तो वास्तव में हाड-मांस का पुतला है, जिसमें असंख्य कीटाणुओं का निवास है, परन्तु मनुष्य की बुद्धि पर ऐसा पर्दा पड़ जाता

है कि वह कलियुगी, तमोगुणी, रुग्ण शरीर के आकर्षण का गुलाम बन कर अपनी जीवन शक्ति नष्ट करता है और वह इसे 'प्रेम' कहता है, यद्यपि ये पाश हैं, जिनसे उसे मुक्त होना चाहिए। ब्रह्मचर्य व्रत के पालन और आत्मा-निश्चय तथा राजयोग के अभ्यास से ही यह विकार मिट सकता है।

सब झगड़ों की बुनियाद —क्रोध

इसको छोड़े बिना संसार में न भाईचारा हो सकता है और न शान्ति ही हो सकती है। परन्तु क्रोध को मिटाने का तरीका सहनशीलता, धीरज, नम्रता और सन्तोष ही है जो ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग से अंकुरित होते हैं।

क्रोधी मनुष्य स्वयं तो क्रोधाग्नि से जलता ही है, परन्तु वह दूसरों की शान्ति पर भी आक्रमण करता है। वह उनकी खुशी को भी लूटता है अथवा उनके आराम को भी आग लगाता है। इस प्रकार इस विकार में कई अपराध

और पाप समाए हुए हैं। इस विकार ने संसार से सुख के सार को छीन लिया है। अत: क्रोध का त्याग ही वास्तविक त्याग है, जिससे मनुष्य के मन में शान्ति का बसेरा होता है और उसका मस्तिष्क ठीक प्रकार से सोच सकता और निर्णय कर सकता है। सन्तोष और शीतलता को धारण करने से ही क्रोध मिट सकता है।

लोभ से होता मन में क्षोभ

प्राय: यह देखा गया है कि मनुष्य लोभ के वश होकर जो कुछ भी इकट्ठा करता है, वह उसका भोग या उपभोग भी लोभ ही के वश करता है। इसके परिणामस्वरूप उसके मन पर भी हानिकर प्रभाव पड़ता है और उससे मन का सन्तुलन तथा इन्द्रियों का नियन्त्रय भी जाता रहता है। यदि वह उपभोग नहीं करता तो एकत्रित किए हुए धन-माल को सरकार तथा लोगों की निगाहों से छिपाने में लगा रहता है, या तो वह धन और दौलत

यों ही धरे रह जाते हैं और वह उनका सेवन किए बिना ही, केवल तृष्णा और सन्ताप ही को साथ ले जाता है। अत: लोभ, जो कि स्वार्थ और निर्दयता का प्रतीक है, को छोड़ना ही शान्ति का उपाय है। त्याग वृत्ति और सन्तोष को धारण करने से ही लोभ और क्षोभ मिट सकते हैं।

करो मोह का त्याग तो बने ऊँचा सौभाग्य

मोह ऐसा विकार है कि मनुष्य को रुला डालता है। जैसे बन्दरिया अपने मरे हुए बच्चे को भी उठाए फिरती है, वैसे ही मोह में पड़ा मनुष्य कलियुगी, मृतप्राय एवं तमोप्रधान सगे-सम्बन्धियों से भी चिपका रहता है, ऐसा जैसा कि दो जुड़वाँ बच्चे जुड़े होते हैं कि सहज रीति या सुरक्षापूर्वक अलग ही नहीं हो सकते। मन को पुत्र-पौत्र या पति की दैहिक प्रीति से कुछ मिनट भी अलग करके परमात्मा पर, जिससे वह आत्मिक नाते से अपने सभी सम्बन्ध मानता है, नहीं टिका सकता और मनुष्य अपने मित्र-कलत्रों से मन को मोड़ कर प्रभु-स्मृति में नहीं टिक सकता। इसी कारण न वे अपने स्वरूप का और न परमपिता परमात्मा का अनुभव कर सकते हैं और न ही उससे होने वाली सच्ची शान्ति का रसास्वादन कर सकते हैं।

अत: अब परमपिता परमात्मा कहते हैं कि अब मन को सभी संगों से उपराम करके एक मुझ ही से आत्मिक नाता जोड़ो। अब 'नष्टोमोह:' होकर 'स्मृतिर्लब्ध:' हो जाओ! मोह के नाश होने से एक पक्षपात रहित, न्यायपूर्ण एवं स्वच्छ समाज का निर्माण हो सकेगा जिसमें मनुष्य का प्यार दैहिक सम्बन्धियों ही तक सीमित नहीं होगा बल्कि वह हरेक मानव-तनधारी से स्नेह करता होगा।

दिव्य गुणों से जय-जयकार, आसुरी लक्षणों से हाहाकार

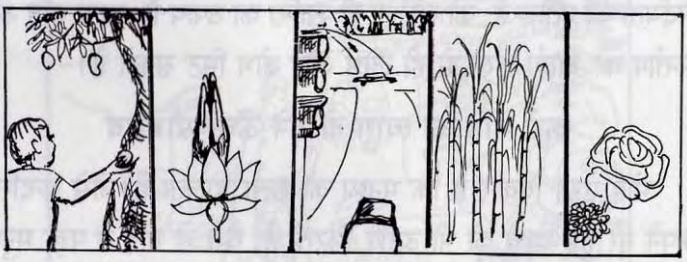

हम पीछे बता आये हैं कि अहंकार, काम, क्रोध आदि विकारों को 'दिव्य गुणों की धारणा' द्वारा वैसे ही निकाला जा सकता है जैसे कि प्रकाश करने से अंधकार को दूर किया जा सकता है। अब हम दिव्य गुणों की चर्चा करते हैं –

नैतिक मूल्य तथा दिव्य गुण ही वास्तव में मनुष्य-आत्मा की स्थायी निधि है जिससे स्वयं उसे ही लाभ होता है और जो दूसरे लोगों के लिए भी एक प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करती है। जिस मनुष्य में नैतिक गुण नहीं हैं, वह स्वयं भी किसी-न-किसी दुर्गुण रूपी कांटे से पीड़ित होता है तथा दूसरों के लिए भी अशान्ति एवं पीड़ा का एक कारण बन जाता है। आसुरी लक्षणों से मनुष्य अपनी साख और प्रतिष्ठा को तो गँवा बैठता ही है परन्तु साथ-साथ उसके तन को रोग, मन को तनाव और धन को व्यसन घेर लेते हैं। इसके विपरीत 'दिव्य गुण' मनुष्य को लोक-पसन्द, मन-पसन्द तथा प्रभु-पसन्द बना देते हैं और उसके जीवन को महानता के शिखर पर ले जाते हैं।

परन्तु आज मनुष्य का कुछ ऐसा स्वभाव हो गया है कि वह सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के अवगुणों पर अधिक ध्यान देता है और बाद में बातचीत के दौरान दूसरों से उसका वर्णन भी करता है तथा कई बार दूसरों के अवगुण-युक्त व्यवहार का, रह-रहकर मन में चिन्तन करके दु:खी होता है। इससे वह अपनी महानता को गँवा बैठता है और दिव्यता की ओर अपनी प्रगति में व्यवधान एवं रुकावट डाल लेता है तथा स्वयं के लिए स्वयं ही अशान्ति पैदा कर लेता है।

यदि ध्यान से देखा जाए तो एक-एक दिव्य गुण बड़ा अनमोल है। उनके मूल्य को ध्यान में रखते हुए हमें किसी भी तरह उन्हें अपने जीवन में धारण करना चाहिए।

उदाहरण के तौर पर हम सहनशीलता पर विचार करते हैं। यदि एक मनुष्य क्रोध में आकर दूसरे पर अपशब्दों का प्रहार शुरू कर दे तो दूसरे की सहनशीलता से स्थिति काबू में आ जाती है और झगड़ा आगे बढ़ने से रुक सकता है। वर्ना यदि दूसरा भी उत्तेजित होकर ईंट का जवाब पत्थर से देने लगे तो सम्पत्ति और जीवन—दोनों नष्ट हो सकते हैं और इस कलह-क्लेश की आग उन दोनों के परिवारों तक पहुंच सकती है। स्पष्ट है कि 'सहनशीलता' धन और जीवन दोनों को बचाने वाली है। वृक्ष के बारे में प्रसिद्ध है कि वह पत्थर मारने वाले को भी फल देता है।

इसी प्रकार नम्रता को लीजिए। कहावत है कि जो चीज थोड़ा झुक जाती है, वह जल्दी नहीं टूटती। आँधी के सामने झुक जाने वाले वृक्ष जल्दी नहीं टूटते। इसी प्रकार नम्रता के स्वभाव वाले मनुष्य का मन जल्दी नहीं

टूटता क्योंकि वह अहंकारी के आगे झुकना जानता है। सबके आगे फूल की न्यायीं कोमल बनकर हाथ जोड़ देने से दूसरा भी कोमल हो जाता है और स्नेह जूट जाता है, टूटता नहीं।

इसी प्रकार, **धीरज** से कितनी ही दुर्घटनाओं से मनुष्य बच जाता है। यदि चौरास्ते पर मनुष्य लाल सिग्नल होने पर तथा दूसरी तरफ से ट्रैफिक चालू होने पर भी धीरज से रुकने का नाम न ले तो परिणाम दुर्घटना ही तो होगा।

मधुरता के स्वभाव वाले मनुष्य को देखें तो उसकी वाणी का मिठास मिठाइयों के मिठास से अधिक प्रिय होता है। तभी तो कटु बोलने तथा अपमान करने वाले व्यक्ति के घर मिठाइयों की महफिल का निमन्त्रण मिलने पर भी कोई नहीं जाता। मधुरता का गुण वास्तव में, खेत के सभी गन्नों के सामूहिक मिठास से अधिक मीठा है।

हर्षितमुखता को लीजिए। यह तो मनुष्य के मुख का अमूल्य शृंगार है।

सड़ियल और कुढ़ने वाले मनुष्य के सुलगने वाले स्वभाव के कारण उसके निकट कोई भी जाना पसन्द नहीं करता। हर्षितमुख व्यक्ति खिले हुए फूल की न्यायीं सभी के मन को भाता है।

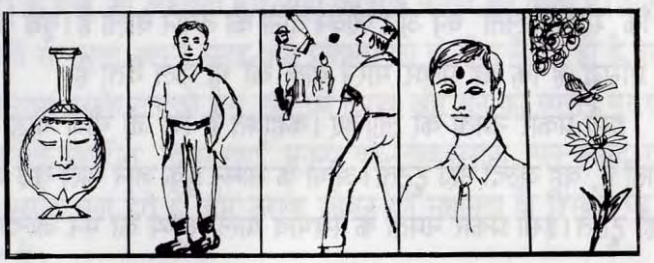

सन्तुष्टता ऐसा गुण है कि इससे बढ़ कर मनुष्य को खुशी देने वाला दूसरा कोई साधन नहीं। जिसमें सन्तोष नहीं है, उसे सारी सृष्टि का राज्य भी खुशी प्रदान नहीं कर सकता। संतुष्ट मनुष्य भरे हुए तृप्त घड़े के समान है जो दूसरों की प्यास बुझाने को तैयार रहता है।

सरलता का गुण तो सभी के मन को भाता है। इसी गुण के कारण लोग बच्चों की ओर आकर्षित होते हैं। सरलता के स्वभाव वाला ही चैन से सो सकता है। जिसमें सरलता का गुण है, वह प्रौढ़ावस्था में भी बालक जैसी निर्मलता और उछल-खुशी महसूस कर सकता है। सरलता के गुण वाला मनुष्य झूठ और धोखेबाजी से भी बचा रहता है।

जो मनुष्य सदा साक्षी अवस्था में रहता है, वही निन्दा-स्तुति और हानि-लाभ में एक समान हर्ष में रह सकता है। जो इस सृष्टि को एक खेल मान कर उससे निर्णायक की न्यायीं न्यारा रहता है। वही साक्षीपन की अवस्था में टिक सकता है। ऐसे साक्षी मनुष्य के मन में इर्ष्या, घृणा आदि भाव उत्पन्न नहीं होते और वह खेल का निरन्तर आनन्द ले सकता है।

अन्तर्मुखता एक ऐसा अनमोल गुण है जिससे मनुष्य कौड़ी खर्च किए बिना, ज्ञान रूपी रत्नों की कमाई करता रहता है और आनन्द के सरोवर में डुबकी लगा कर सदा शान्ति और शीतलता में रमा रहता है।

फिर, जो मनुष्य अन्य हरेक में गुण देखता है वही गुण-ग्राहक ही सर्वगुण सम्पन्न बन सकता है और वही अपने तथा दूसरे के कल्याण के निमित्त बन सकता है। वही मधुमक्खी की तरह गुणों की मधु बटोर सकता है।

ऐसे ही दूसरे सभी गुण अनमोल हैं। अत: मनुष्य को चाहिए कि प्रतिदिन कम-से-कम दस मिनट तो आत्म-निरीक्षण करता हुआ इनका चिन्तन करे और देखे कि उसमें जिस दिव्य गुण की कमी है, उसे धारण करने का पुरुषार्थ करे।

सब चर्चा से श्रेष्ठ चर्चा

मनुष्य जैसी चर्चा करता है, वैसी ही उसकी मनोस्थिति हो जाती है। इसका कारण यह है कि वह जिस विषय पर बोलता है अथवा जिस व्यक्ति के बारे में बातचीत करता है, उसमें उनके प्रति उसकी अपनी भावनाएँ अथवा संवेदनाएँ भी साथ-साथ ही अभिव्यक्ति पाती हैं और वह भावना-अभिव्यक्ति उस मनुष्य की मनोदशा (mood) को भी अपने अनुरूप ही बना जाती है, वैसी ही उस दिन उसकी हरेक परिस्थिति के प्रति दृष्टि हो जाती है। अत: यदि उसका 'मूड' (mood) ठीक हो तो वह स्नेह से व्यवहार करता और रचनात्मक कार्य करता है और यदि मनोदशा बिगड़ जाए तो वह दूसरों के साथ सम्बन्ध बिगाड़ बैठता है और टेढ़े-बांके काम करता है। इस सारी बात को ध्यान में रखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिदिन कुछ-न-कुछ समय परमपिता की चर्चा करना कितना श्रेयस्कर है। परमात्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, ज्योति स्वरूप है और आनन्द, शान्ति तथा प्रेम के सागर हैं। अत: प्रेम-विभोर होकर उसकी चर्चा करने से मनुष्य की मनोस्थिति ऐसी हो जाती है कि उसके अपने मन, वचन और कर्म में पवित्रता, शान्ति और आनंद का उद्रेक होता है और इस स्थिति से उसका सारा व्यवहार भी श्रेष्ठ हो जाता है।

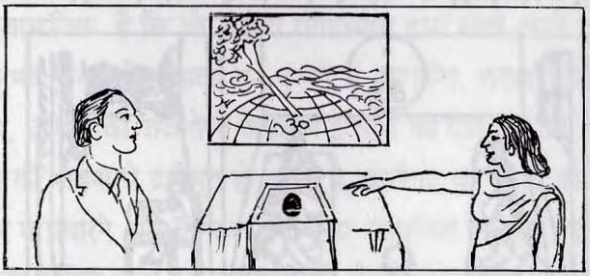

संसार में रहते हुए मनुष्य को किसी विषय पर या कुछ व्यक्तियों के बारे में चर्चा तो करनी पड़ती है। वास्तव में उस चर्चा का आशय शुभ और फल कल्याणकारी होना चाहिए। निस्सन्देह, सभी चर्चाओं में 'प्रभु-चर्चा' ही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य को शुभ के चिन्तन की टेव पड़ती है और वह अन्य आत्माओं को परमात्मा का परिचय देकर उनके जीवन में शान्ति और आनंद का रस भरने के फलस्वरूप उनके आशीर्वाद का पात्र भी बनता है। फिर प्रभु-चर्चा तो ऐसी है कि उसके लिए नित्य नया विषय मिल सकता है; तभी तो कहा गया है कि 'यदि सागर को मसि मान लें तो भी प्रभु-महिमा नहीं लिखी जा सकती।' अत: नित्य प्रभु-चर्चा का कोई विषय लेकर दूसरों को भी इस चर्चा द्वारा सुख देना चाहिए।

सहज राजयोग से मिटते हैं रोग और भोग

अभी कुछ ही समय से देश और विदेश के लोग 'योग' के महत्त्व को फिर से समझने लगे हैं। उन्होंने आज वैज्ञानिक परीक्षण से भी देखा है कि योग के अभ्यास द्वारा मनुष्य को कायिक और मानसिक विश्रान्ति (Relaxation) मिलती है और रोगों का सामना करने के लिए उसके शरीर की क्षमता बढ़ती है। इतना ही नहीं बल्कि मानसिक संकल्पों-विकल्पों से होने वाले अनेक रोगों से छुटकारा मिलता है। नशीले पदार्थों (Drugs), धूम्रपान इत्यादि के प्रति उसकी प्रवृत्ति का अन्त होता है, उसकी कार्य-क्षमता तथा दक्षता बढ़ती है, उसमें एकाग्रता और मनोबल खूब विकास पाते हैं, उसका जीवन संयमित होने के कारण वह फिजूल खर्च से बचता है और योग के यम-नियमों के कारण उसका आचरण श्रेष्ठ और उसका नैतिक बल समुन्नत होता है। विशेष बात यह है कि उसे अभूतपूर्व शान्ति, आनन्द तथा मानसिक सन्तुलन की प्राप्ति होती है। आध्यात्मिक भाषा में तो यहां तक कहा गया है कि योग द्वारा मनुष्य को ईश्वर की अनुभूति होती है, उसमें सद्गुणों का उत्कर्ष होता है और वह मुक्ति तथा जीवनमुक्ति का सौभाग्य प्राप्त कर लेता है।

स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति योगाभ्यास द्वारा स्वयं अपने जीवन में ये अनुभव करता है, उसका मन दूसरों में अशान्ति, तनाव, इन्द्रियों की दासता, आदतों की जंजीरों में जकड़ाव इत्यादि को देख कर उन्हें भी इनसे छुड़ाने की भावना से द्रवीभूत हो उठता है, इसलिए वह दूसरों को भी योग शिविर में पधारने और लाभ लेने के लिए आमन्त्रित करता है, इस प्रकार जब एक व्यक्ति अन्य दस व्यक्तियों को योग से लाभान्वित करता है और फिर उनमें से दूसरे व्यक्ति औरों को यह लाभ पहुँचाने का पुरुषार्थ करते हैं तो विश्व-परिवर्तन की प्रक्रिया अथवा क्रांति – संख्या और गुण दोनों की दृष्टि से, तीव्र गति को पकड़ लेती है।

आज संसार में जो अनेक समस्याएँ हैं और जो दु:ख तथा अशान्ति है, उसका मूल कारण ही यही है कि मनुष्य भोगों और मानसिक रोगों के बन्धन में है। अत: संसार को बदल कर फिर से यहाँ स्वास्थ्य, सुख और मर्यादा की स्थापना के लिए हर मनुष्य को योग-युक्त बनाना ही श्रेष्ठ सेवा है। सहज राजयोग का वर्णन अलग पुस्तक में किया गया है।